TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182540

UNIVERSAL
LIBRARY

अग्नि-गान

रचयिता—
श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'

प्रकाशक
वाणी-मन्दिर
अस्पताल रोड, लाहौर।
द्वितीय संस्करण] १९४६ [मूल्य ।।)

श्रीमती वैकुंटीदेवी
अध्यक्षा—वाणी-मन्दिर,
अस्पताल रोड, लाहौर।

लेखक की अन्य रचनाएँ

काव्य	नाटक
आँखों में	स्वप्न-भंग
जादूगरनी	आहुति
अनंत के पथ पर	रक्षा-बंधन
स्वर्ण-विहान	शिवा-साधना
अग्नि-गान	प्रतिशोध
प्रतिमा	पाताल-विजय
विधवा-वेदना	बंधन
प्याली	छाया
जागरण	मंदिर
	विष-पान

CHECKED 1965

मुद्रक
ला० खुशहालचन्द, 'आनन्द'
वीर मिलाप प्रेस,
गणपत रोड, लाहौर।

समर्पण

मेरे वे नन्हे-नन्हे शिशु, सही जिन्होंने मार जगत की।
जिनके कोमल हृदयों पर है पड़ी तीव्र तलवार जगत की।
जिनकी आषाढ़ी आँखों ने मेरे उर में आग लगादी।
मेरे कवि के प्राणों में है पीड़ा की झंकार उठादी।

देता हूँ उनको मैं भर कर
'अग्नि-गान' में अंतर्ज्वाला।
इसे सुनें, सुन क्रांति-दूत बन
भरें जननि का खाली प्याला।

—'प्रेमी'

❀:—:❀—:*

प्रकाशन

(प्रथम संस्करण से)

हिंदी-जगत् कवि प्रेमी को शायद भूल चला है, किंतु अग्नि-गान' आज फिर उसके अस्तित्व का परिचय देने आ रहा है। इस कविता-संग्रह की प्रत्येक पंक्ति मैंने अपने हृदय के ख़ून से लिखी है। इसमें 'छायावाद' या 'रहस्यवाद नहीं है, यह तो जीवन की नंगी तस्वीर है। सौन्दर्य घूंघट के भीतर अधिक आकर्षक जान पड़ता है, किंतु मेरी ये रचनाएँ आवरणहीन हैं, इसलिए संभवतः आकर्षणहीन भी जान पड़ें। इन में अधिक लालित्य और रस भरा जा सकता था, पर ये ऐसे तीखे क्षणों में लिखी गई हैं, कि इनमें रस की नहीं तलवार की धार है। ये कलेजे में तीर की तरह चुभेंगी। पीड़ित, दलित और घायल हृदय को बेचैन कर देंगी।

समाज व्यक्तियों का बना है। व्यक्ति का सुख-दुख समाज का सुख-दुख है। मैंने अपनी राम-कहानी' कहने के लिए ये पंक्तियाँ संसार के सामने नहीं रखीं। मैं तो संसार से

मेरी इन कविताओं में अपनी कहानी पढ़ने को कहता हूँ। जो 'मैं' है, वही 'समाज' है, जो समाज है वही संसार है। जो आग मेरे हृदय में जलती है, वही संसार के प्रत्येक प्राणी के प्राणों में भी। इसलिए यह मेरी बात होते हुए भी संसार की है और संसार की होते हुए भी मेरी है।

बहुत से व्यक्ति हैं जो इन कविताओं में राजनीति की झलक देखते हैं, और उनकी तरह दूसरे लोग भी देखेंगे, किन्तु विशेष राज्य, जाति, राष्ट्र या वर्ग के विरुद्ध प्रतिहिंसा जाग्रत करने के उद्देश्य से ये रचनाएँ नहीं लिखी गईं। मुझे भारत की ग़रीबी-ग्रस्त, सम्मानहीन और दासता-पाश-बद्ध स्थिति पसन्द नहीं है, इसी तरह दूसरे गुलाम और ग़रीब देशों के आदमियों को भी अपने बंधन नापसंद हैं। न केवल एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र की दासता असह्य है बल्कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग की ज्यादती भी नहीं भाती और उसे दूर करने का वह प्रयत्न करता है। इसी व्यापक अर्थ में इन रचनाओं में राजनीति है। सच पूछो तो मेरा विद्रोह वर्तमान सामाजिक विषमता के विरुद्ध है, जिस ने एक व्यक्ति को दाने-दाने के लिए मुहताज कर दिया है और दूसरे को इतना धनी बना दिया है कि उसका द्रव्य किसी काम नहीं आ रहा। वह व्यक्ति बेकार पड़ा हुआ द्रव्य अभाव-ग्रस्त प्राणियों को नहीं देता, ऐसी उसकी स्वार्थ-बुद्धि है। जिन सामाजिक नियमों

और जिन शासन-तंत्रों ने ऐसी त्रुटिपूर्ण व्यवस्था की है, वे मुझे संसार पर अभिशाप जान पड़ते हैं। इन नियमों के कारण पीड़ितों और अभाव-ग्रस्तों का हृदय किस प्रकार की ज्वाला में दिन रात जलता है उसकी ही तस्वीर इन कविताओं में है। यदि लोग इसे ही राजनीति समझते हैं, तो ऐसी राजनीति इनमें है। विशेष राज्य, राष्ट्र, जाति, वर्ग या व्यक्ति के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं क्रान्ति चाहता हूँ, पर वह केवल भारत की या किसी एक देश की सीमा में बँधी हुई नहीं, बल्कि विश्व-व्यापी।

साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और मशीनों के आविष्कार ने मानवता को पतन की पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। ग़रीबों की ज़िंदगी नरक से भी अधिक कष्टमय है। मनुष्य का मनुष्य के द्वारा घोर अपमान हो रहा है। ऐसा अपमान मैं स्वयं सह रहा हूँ और मेरे हृदय में जो तूफ़ान उठता रहता है, उसी से मैं औरों के दिल के हाल का अंदाज़ लगाता हूँ। इसके पहले कि ये सुलगे हुए हृदय भीषण रूप में धधक उठें संसार को अपनी बीमारी दूर करने का उपचार करना चाहिए।

मेरी इन कविताओं में महाक्रान्ति, महाप्रलय, शस्त्र, तीर, तलवार, गोले-गोली, आदि शब्द पढ़ कर शायद लोग समझें कि मैं सशस्त्र क्रान्ति चाहता हूँ—हिंसा का प्रचारक हूँ। क्रान्ति या प्रलय से मेरा अर्थ वर्तमान स्थिति को नष्ट

करने वाले प्रयत्नों से है। शस्त्र, तीर, तलवार, गोले-गोली बंदूक आदि से मेरा आशय उन उपायों से है जिनके द्वारा वैषम्य का नाश किया जा सकता है। महात्मा गाँधी का शस्त्र अहिंसात्मक सत्याग्रह है, इसी प्रकार और दूसरे ऐसे उपायों को भी हम शस्त्र की संज्ञा दे सकते हैं, जिनमें घातक शस्त्रों का प्रयोग किए बिना ही सामाजिक वैषम्य को दूर किया जा सके। जैसे मैंने लिखा है कि—

तुम भी, प्रेयसि, वीणा छोड़ो,
हाथों में तलवार उठाओ।

इसका सीधा-सादा अर्थ यह है कि अब अपने आपको भोग-विलास और ललित कलाओं में व्यस्त रखने के बजाय सामाजिक क्रांति के समर-क्षेत्र में आओ। तलवार उठाओ का अर्थ वह शस्त्र ग्रहण करो जिससे यह वैषम्य मिटाया जा सके। यह तलवार महात्मा गाँधी का असहयोग या अहिंसात्मक सत्याग्रह भी हो सकता है। काव्य में शब्दों का रूढ़ि-अर्थ न लेकर उनका लाक्षणिक अर्थ लेना होता है। जो मेरी रचनाओं का ऐसा व्यापक अर्थ न लगावेंगे वे मेरे साथ अन्याय करेंगे।

मैं स्वार्थ के राक्षस का नाश चाहता हूँ। किसी जाति, राष्ट्र या देश का अंत मुझे अभीष्ट नहीं। मैं राजनीति के क्षेत्र में भारत की वही स्थिति चाहता हूँ जो इंगलैंड और भारत के आदर्शों, कानूनों, मनोभावनाओं और धारणा में अंतर न

रखे । जिन उपायों को अपनी आज़ादी कायम रखने के लिए इङ्गलैंड न्याय्य समझता है, उनको यदि भारत भी प्रयोग में लावे तो उन्हें जुर्म न समझा जावे । न्याय यही कहता है, लेकिन हिंदुस्तान को उन उपायों पर चलना अनिवार्य नहीं है । हिंसात्मक उपाय भारत के राजनीतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल नहीं है । भारत अपने अधिकार केवल कष्ट-सहन और बलिदान के द्वारा ही पा सकता है । मेरी इन रचनाओं में जहाँ कहीं शस्त्र-प्रयोग की बात कही गई है वहाँ पर इसी अहिंसा की तलवार से तात्पर्य है । रिपु से मेरा अर्थ मनुष्य की काया से नहीं, उसकी स्वार्थ-भावना से है । हमें उसके मन के शैतान का नाश करना है । जहाँ मैंने लिखा है—

'अपने या रिपु के जीवन का,
रत्ती भर मत मोल करो री ।'

उसका अर्थ यही है कि अपना बलिदान चढ़ाने में मत झिझको और स्वार्थियों के हृदयों पर जो भूत सवार है, उनकी जो मनस्थिति है, उसे मार डालने में संकोच मत करो । उनके मन में बैठे शैतान के जीवन का कुछ भी मोल मत करो । इस प्रकाश में मेरी रचनाओं को पढ़ना होगा । मैं महात्मा गांधी की तरह हिंसा को कमज़ोरों का अस्त्र मानता हूँ । यह बात ठीक है कि हिंदुस्तान भी बहुत कमज़ोर है, मैं भी इतना कमज़ोर कि मेरे हृदय में भी प्रतिहिंसा की आग कभी जल उठती है,

फिर भी मैं हिंदुस्तान को इतना बलवान देखना चाहता हूँ, इतना संगठित देखना चाहता हूँ कि वह अहिंसक उपायों से कष्ट-सहन और बलिदान के द्वारा अपना उचित स्थान पा सके।

मैंने इतना स्पष्टीकरण इसलिए किया है कि मेरे पाठक इन रचनाओं को वर्तमान राजनीति का चश्मा लगाकर पढ़ने पर भ्रम में न पड़ जायँ। मैंने राजनीति की संकुचित सीमा में बाँध कर इन्हें नहीं लिखा। यह तो अन्याय और स्वार्थ के विरुद्ध सहिष्णुता और शांति का विद्रोह है। यह देश-सीमा के परे है—यह विश्व के प्रत्येक प्राणी की कहानी है। मैंने यदि किसी जगह लिखा है कि—

'गहरी लाली से भर जावे,
धवल हिमालय की गिरि-माला।'

तो इसलिए कि मैं भारत में बैठकर इन कविताओं को लिख रहा हूँ और यहाँ के वातावरण को अपनी रचनाओं में आने से रोक नहीं सकता, लेकिन दूसरे देश वाले हिमालय के स्थान पर अपने किसी पर्वत की कल्पना कर सकते हैं।

जहाँ मैंने लिखा है—

वही आग जिसकी लपटों में
जली पद्मिनी जौहर वाली।
वही आग—जिसकी लपटों में
भस्म हुई मैना मतवाली।

वहीं मैंने लिखा है—

वही आग जिसकी लपटों की
देवि जोन ने पहनी साड़ी।

मेरे लिए तो फ्रांस और हिन्दुस्तान में कोई अंतर नहीं है। केवल देश देश में ही नहीं, मुझे तो प्राणी-प्राणी में भी भेद नज़र नहीं आता, तभी तो मैं पक्षी से भी कहता हूँ—

पंखी, नीड़ तुम्हारा ही क्या
सभी ग़रीबों के घर लुटते।

प्राणीमात्र की समस्या एक है।

यहाँ पर मेरी इन कविताओं में से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर बताता हूँ कि मैं मनुष्य की नहीं मनुष्य की हिंसा-वृत्ति की हत्या करना चाहता हूँ। मैं अफ़सोस के साथ कहता हूँ कि—

आज जगत तो, प्रिये, प्रेम की
दुनिया का है खून कर रहा।
सौख्य, शांति, सन्तोष छोड़कर
वह अशान्ति के लिए मर रहा।
वह कंगालों के लोहू से
अपने सुख का पात्र भर रहा!
अखिल विश्व के कण-कण से है
हिंसा का ही ज़हर झर रहा।

स्वार्थ ने सारे संसार को हिंसा का पुजारी बना दिया है यह मुझे अच्छा नहीं लगता। मैंने पंक्षी को संबोधित करके लिखा है।

कवि ने कहा कि सच है दुनिया
जलती हिंसा की ज्वाला में।
भेद नहीं है आज सर्प में
और गले की वरमाला में।
आज स्वजन ही गला काटते
किससे बचकर चलें यहाँ पर?
सभी जगह तलवार तनी है
बचकर जावें कहो कहाँ पर?
नित्य नये शस्त्रास्त्र बन रहे
है भयभीत सभ्यता सारी।
पंक्षी, केवल तुम पर ही क्या
आज विश्व पर विपदा भारी।

❀ ❀ ❀

जबसे स्वार्थ घुसा प्राणों में
हिंसा नस नस में है छाई।
भाई के लोहू का प्यासा
आज दिखाई देता भाई।
पंक्षी, नीड़ तुम्हारा ही क्या

सभी ग़रीबों के घर लुटते।
आज मानवों को खाने को
दो दाने भी सहज न जुटते।
पर यह सब कृत्रिम उबाल है
इसका दौरा चल न सकेगा।
हिम्मत मत हारो जग फिर से
प्रेम-पन्थ की ओर मुड़ेगा।

इसी प्रेम-पन्थ की ओर संसार को ले जाने की मेरी इच्छा है।

मेरी इन कविताओं को पढ़ कर लोग मुझे साम्यवादी कहने की कृपा करेंगे, लेकिन ईमानदारी की बात यह है कि मैं साम्यवाद के सिद्धान्तों से भली भाँति परिचित नहीं हूँ। मैं नहीं जानता कि साम्यवाद की राज्य-व्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था मेरे हृदय के अनुकूल है या नहीं, लेकिन मुझे अपने देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था बहुत ही त्रुटिपूर्ण जान पड़ती है। यह बात केवल भारत के विषय में ही नहीं संसार के अधिकांश देशों के विषय में भी कही जा सकती है।

"कहीं विभव के शैल खड़े हैं,
कहीं ग़रीबी की है खाई"।

यह बात जिस तरह भारत के लिए लागू होती है उतनी

ही इंगलैंड के लिए भी। हिन्दुस्तान परतन्त्र है इसलिए यहां ग़रीबों का कष्ट चरम सीमा तक पहुँच गया है। दूसरे देशों में यह बात नहीं है, फिर भी थोड़े से स्वार्थियों ने बहुसंख्यक लोगों को दाने-दाने को मुहताज बना रखा है।

मैं चाहता हूँ कि लोग अपनी शक्ति को पहचानें। अत्याचार और अन्याय का क़िला बहुत मज़बूत नहीं है, हमारी हड्डियाँ-मांस उसके ईंट-चूने हैं। हममें जीवन का इतना मोह और लालच है कि हम अपने सम्मान और आत्म-विश्वास को बेच देते हैं। हमारे सहयोग से ही तो यह अन्याय का रथ चल रहा है।

वर्तमान सभ्यता का यह जुल्म भरा पहलू दिखाते हुए भी, कह सकता हूँ कि केवल प्रचार-वृत्ति से ये कविताएँ नहीं लिखी गईं। दो-एक रचनाएँ ऐसी हो सकती हैं, लेकिन अधिकांश ऐसी हैं जो गहरी अनुभूति का परिणाम हैं, उनमें नग्न सत्य है लेकिन कला की हत्या नहीं है। किसी प्रकार का प्रचार करने का पहले से ही इरादा करके इन्हें नहीं लिखा है। यह बात दूसरी है कि पाठकों के मस्तिष्क पर इनका प्रचारात्मक प्रभाव पड़ जाय। मैंने तो अपनी बात कही है, कोई सन्देश नहीं दिया। पर प्रत्येक तस्वीर स्वयं एक सन्देश होती है, इसलिए मेरी इन तस्वीरों में भी सन्देश हैं, लेकिन वह अनायास ही आ गया है। उससे कला को कोई हानि नहीं हुई, ऐसी मेरी धारणा है।

मेरी इस पुस्तक की उम्र कितनी है, इसका मुझे पता नहीं, किंतु इस बात का मुझे विश्वास है कि जो इसे पढ़ेगा वह इसकी ज्वाला को काफ़ी दिनों तक अनुभव करेगा। 'अग्नि-गान' मेरे जले हुए हृदय की चीख है। मैं इन कविताओं को न लिखता तो सम्भवतः मेरा हृदय फट जाता और आज इतना लिखने के बाद भी मेरी आग ठण्डी नहीं हुई। जो कुछ लिखा है उसे जब पढ़ता हूँ तो ऐसा जान पड़ता है जैसे मैं अपनी लपटों में जल रहा हूँ। ऐसी तीव्र अनुभूति है इनमें। मेरे लिए ऐसा ही है, दूसरों के लिए है या नहीं यह मैं नहीं जानता।

काव्य-जगत् में 'अग्नि-गान' कौनसा स्थान पावेगा, इसकी मुझे चिंता नहीं है। मैंने पूरी ईमानदारी के साथ संसार के सामने अपनी अनुभूति की तस्वीर खींच दी है। कोई इसे पसन्द करे, चाहे न करे।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

राखी के दिन रात—

१

बहन, तड़ित से तन पर पहने हुए घटा-सी साड़ी काली,
जिस में जड़ी किनारी सुन्दर इन्द्रधनुष से रंगों वाली,
मृदु मलार की तान नूपुरों में तू समुद बजाती आई,
भैया के सूखे मानस मे रस की झड़ी लगाती आई।

सावन की पूनम की बदली
आज नया जीवन लाई है।
तू मेरे नक्षत्र जगाने को
राखी लेकर आई है।

२

है हरियाली-हीन मरुस्थल-सा यह जलता जीवन मेरा।
यहाँ प्रात में रात बसी है, ज्योत्स्ना में है बसा अँधेरा।
धू-धू करती आँधी आती, कुटिया के तृण-पात उड़ाती।
तू क्यों आ पहुँची है, बहना, यहाँ कभी बरसात न आती।
युग बीते, बावली, हृदय की
झील पड़ी है खाली खाली।
अंगारों-सी धधक रही हैं
आँखें जल बरसाने वाली।

३

तुझे देख कर बचपन के दिन हरे हो चले आज अचानक।
जुगनू से फिर चमक उठे हैं पागलपन से भरे कथानक।
मैं आमों के वन में डाला करता था रेशम का झूला।
तुझे झूलते देख मयूरों का दल नहीं समाता फूला।
तरुओं की शीतल छाया में
नर्तन करते थे दीवाने।
तू आई है इन आँखों में
फिर सावन के मेघ झुलाने।

४

उस बरसाती नाले के तट, बहन, हमारा घर था प्यारा।
कभी-कभी चौबारे तक चढ़ आती थी नाले की धारा।
घर से एक खेत के पीछे एक टेकरी थी हरियाली।
जिसके मंदिर में तू जाती थी फूलों से भर कर थाली।
कुंकुम रोली-भरे मेघ थे
छाते जिस पर साँझ-सवेरे।
उस नंदन-निकुंज से लाए
यहाँ खींचकर दुर्दिन मेरे।

५

घर से कुछ ही दूर भरा था ताल कटोरे-सा अति सुन्दर।
जीवन में जो ज्वार उठाता था ऊपर तक जल से भर कर।
शुभ्र चाँदनी रातों में हम जिसमें खेया करते नैया।
आज बहन की आँखों में वह नैया खोज रहा है भैया।
बचपन गया, जवानी आई,
आँधी मुझे उड़ाकर लाई।
ताल-तलैया नाले सूखे,
पथ में भरी भयानक खाई।

६

पहले मैंने वीणा पकड़ी, फिर सहसा तलवार उठाई।
फिर शासन के घर का कुछ दिन बन कर रहना पड़ा जमाई।
मेरी छाया से भी नफ़रत करते रहते स्वजन हमारे।
भूल पड़े क्यों आज यहाँ पर चरण-कमल वे प्यारे-प्यारे।
यह तो अंगारों की बस्ती।
यहाँ मरे लोगों को हस्ती।
यहाँ सुधा या सुरा नहीं है।
यहाँ गरल की है अरामस्ती।

७

क्या था नहीं हमारे घर में, सुख, वैभव या प्यार किसी का?
पर हम मुक्त नहीं पंखी से, हम पर बन्धन-भार किसी का।
यह खाना-दाना अपना है, इस पर अंकित नाम किसी का।
है घर-द्वार हमारा, इस पर पहरा आठों याम किसी का।
अपनी साँसें बिकी हुई हैं,
अपने गान गुलाम किसी के।
हाथ-पैर अपने हैं, पर ये
करते रहते काम किसी के।

८

तुझे याद होंगी चंदा-सी सुन्दर सखियाँ बचपन वाली।
उनमें कितनी हुई परिश्रम से थक जर्जर, दुर्बल, काली।
तुझे याद होगी वह श्यामा, जिससे तूने मुझे मिलाया।
बहन, राख हो चुकी कभी की उसकी कोमल कंचन-काया।
ऐसे ही दिन-रात यहाँ पर
विपदाओं के झोंके आते।
तेरे भैया से कितने ही
पगले प्राण चढ़ाये जाते।

९

तू आई है आज बाँधने मेरे कर में राखी प्यारी।
अच्छा है मिल लिए यहाँ तो रहती चलाचली की बारी।
मेरे जीवन और मरण में केवल एक साँस का अन्तर।
शूली से भी तीखी होती विद्रोही की राह भयंकर।
न्याय जिसे डाकू कहता है,
तू आशीश उसे देती है।
क्यों कानून-भंग का अपने,
सर अपराध लिए लेती है?

१०

क्या कहती है दुनिया भूले, बहन नहीं तुमको भूलेगी।
न्याय कहेगा तो फाँसी के झूले पर भी वह झूलेगी।
काँटों पर चलने वाले का साथ निभाने आई है वह।
भैया के बुझते प्राणों की राख हटाने आई है वह।
तो ला, हृदय रक्त से टीका
लगा, बाँध दे राखी, बहना।
शीश कटाने का आमंत्रण
है, बहना, यह तेरा गहना।

११

सूझ नहीं पड़ता है कुछ भी क्या दूँ आज बिदाई में मैं।
सब ऐश्वर्य्य गँवा बैठा हूँ जग के साथ लड़ाई में मैं।
उधर नज़र कर देख खुटी पर एक पोटली पीली-पीली।
उसमें राख रखी श्यामा की क्यों करती है आँखें गीली।
राखी के दिन राख तुझे
देता हूँ, बहना, लेती जा तू।
अपना हृदय प्रज्वलित कर ले,
इस दुनिया में आग लगा तू।

अमर ज्योति—

१

मुझे होलिका चली जलाने, स्वयं भस्म हो गई अभागिन।
स्वयं काल का ग्रास बन गई मुझको खाने वाली बाघिन।
जिस दिन जगत् मारने मुझको भरकर लाया विष का प्याला।
उस दिन मुझमें अमर नशा बन, झूम उठा जीवन मतवाला।

अमर अनल-पक्षी हूँ मैं तो,
मुझको मरने का क्या भय है?
मेरी राख जी उठी फिर से,
होता जग को क्यों विस्मय है?

२

मेरे पंख वायु के, इनको काट सकेगा कोई, बोलो ?
मैं तो पानी की धारा हूँ, सुदृढ़ पर्वतों छाती, खोलो।
मेरे उर में झाँक-झाँक कर देखो तुम अपनी तसवीरें।
बालू के कण-कण में अंकित गिरिमालाओं की तक़दीरें।

अपने बंदी-गृह में मुझको
पकड़-जकड़ कर रखने वाले,
बाहर देखो, भग्न पड़े हैं,
वे लोहे से निर्मित ताले।

३

मेरी लाश गाड़ने को जब कब्र खोदने चली कुदाली,
बोली भूमि, 'यहाँ तो ज़ालिम को लाने की इच्छा पाली।'
मेरा जीवन जग के कण-कण में व्यापक है मुझ को मारे।
इतनी जान किसी में है क्या, आँखें खोल, अरे हत्यारे!

मेरी एक-एक लोहू की
बूँद, अमर जीवन का प्याला।
भोले, मेरी छाती में तुम
छेद रहे हो अपना भाला।

४

मेरी आँखें चमक रही हैं नभ के नक्षत्रों में जग-मग।
गाढ़ रहा है मेरी आँखों में क्यों तप्त शलाखाएँ जग?
मेरी काया की रग, जग की राहों की बिखरी रेखाएँ।
मेरे पथ के दीपक को क्यों व्यर्थ बुझाने चली हवाएँ।

अंधकार को मैंने अपने
ऊपर ओढ़ लिया चादर सा।
मेरे लिए मरण का घर भी
सुखकर जीवन-धन के घर सा।

५

मैंने अपने बीज बो रखे हैं भविष्य के मैदानों में।
मुझ को कूट रहे हो क्या तुम अपने ओछे खलिहानों में।
मैंने बिठा लिया रवि-शशि को अपने अंबर से प्राणों में
मुझ पर व्यर्थ चलाता है जग विष भर-भर तीखे बाणों में

कोमल रोम बन गए जग के
शत-शत शर मेरी काया में।
जीता कब तक जुल्म बचेगा
मेरे शासन की छाया में।

६

मेरे गीत बन रहे निर्झर, प्राण बह रहे हैं सागर में।
मुझ को भरने को आए हो तुम ओछेपन की गागर में।
मेरा मौन मुखर हो उठता है भूकंपों की हल-चल में।
मेरी क्षमा वज्र बन जाती प्रलयंकर जलदों के दल में।
ऊँचे-ऊँचे महल उठाते
हैं क्यों मेरे आगे मस्तक?
टिक सकता है गर्व किसी का
महाकाल के आगे कब तक?

७

बहते हैं मेरी छाती पर जगत् जहाज़ों से सकुचाते।
मुझको मछली समझ फँसाने को तुम अपने जाल बिछाते।
मेरे प्राणों में तुम झाँको, तुमसे कितने वहाँ सो गए।
विजय खोजने जो आए थे, विफल हो गए, स्वयं खो गए॥
मैंने लाद रखी युग-युग से
अपने सर पर वसुधा सारी।
शेषनाग का फन काटेगा
जग के साहस की बलिहारी।

८

मैं अपने आँसू के कण से धो सकता अस्तित्व तुम्हारा।
मुझ पर उठा रहे हो पागल कुछ भी सोचे बिना दुधारा।
मेरी एक फूँक से उड़ने लग जाते हैं गिरि अंबर में।
तुम पतंग सा चले उड़ाने, मुझे डोर से बाँध, अधर में।
औरों से खिलवाड़ करो मत,
तुम अपना अस्तित्व सँभालो।
जिस पर खड़े, खिसकती है वह
भूमि, उसे तो देखो-भालो।

९

मैंने जान लिया है जीना, मरना, खिलना, फिर मुरझाना।
मेरे लिए एक हैं दोनों भैरव या विहाग का गाना।
जीवन और मरण दोनों हैं, प्राणों के ताने-बाने से।
मैं न रहूँगा दोनों में से एक चीज़ के मर जाने से।
तुम तलवार उठा कर आए
मेरे सर को आज उड़ाने।
किसने किरणों को काटा है,
किस पर आए शस्त्र चलाने?

१०

युग-युग से है जुल्म कह रहा, 'आजादी का नाम मिटा दूँ।
उड़ने वाले जो पंखी है, उन्हें पकड़ कर पंख जला दूँ।
दिल-दिल में जो दीपक जलता, उसे तोड़ कर पथ पर फेकूँ।
और न्याय के मंदिर में मैं आग लगा कर आँखें सेकूँ।

किन्तु, जुल्म जल रहा स्वयं ही,
अपनी इच्छा की ज्वाला में।
उसे मरण का सर्प डस रहा
है उसकी ही जय-माला में।

११

स्वागत शीश काटने वाले, स्वागत मुझे मिटाने वाले!
दे तलवार मुझे, मैं भर दूँ अपने ही लोहू से प्याले।
मुझे जलाने को आए हो अपनी आग बुझाने वाले!
देखो, नभ में नव-जीवन पा हँसते शीश चढ़ाने वाले।

दीपक से दीपक जलता है,
ज्योति अमर माँ के मन्दिर की।
तुम दीपक की ज्योति बढ़ा दो,
बत्ती काटो मेरे सिर की।

नव-निर्माण—

१

तुम भी, प्रेयसि, वीणा छोड़ो, हाथों में तलवार उठाओ।
तारों की झंकार नहीं, अब खड्गों की खनकार सुनाओ।
मेरे प्याले में अब मदिरा नहीं, रक्त भर-भर कर लाओ।
अधरों को ही नहीं देह को भी लोहू में स्नान कराओ।

रंग-रास की रजनी बीती,
अब रण की दोपहरी आई।
दिशा-दिशा से हमको देता
है ताण्डव का तोड़ सुनाई।

२

अब फूलों की सेज जलादो, शूलों की शैया अपनाओ
नव-वसन्त का उत्सव त्यागो, अमर-मरण त्योहार मनाओ।
प्रिये, प्रजापति के आसन पर महाकाल को अब बैठाओ।
सृष्टि मरे, विध्वंस जिए, सखि, महाप्रलय के प्राण जगाओ।
अपनी घनी और ज़हरीली
वेणी को खोलो अलबेली।
नभ में बादल से फैलाती
आओ मेरी प्रलय सहेली।

३

प्राण, प्रेम का खेल हो चुका अब आकर्षणहीन, पुराना।
ब्रज की बंशी छोड़, हमें है कुरुक्षेत्र का शंख बजाना।
मेरी राधे, प्रेम-पंथ पर छोड़ो अब अभिसार रचाना।
तुमको असुरों की दुनियाँ में है दुर्गा का रूप दिखाना।
वृंदावन के कल-कुँजों में
तोड़ें सुमन न बन बनमाली।
आओ, अब मुँडों की माला
हम दोनों मिल गूथें, आली।

४

सावन की फुहियों में लोहू, भादों की झर में हो लोहू।
ताल-तलैया, नाले-निर्झर, सरिता-सागर में हो लोहू।
गहरी लाली से भर जावे, धवल हिमालय की गिरिमाला।
बेला, जुही, चमेली सब में, भरो शहीदी रंग निराला।
बसुधा का अणु-अणु लाली से
भरे, लाल हो अंबर सारा।
काली की जिह्वा-सा चमके
मस्तक का सिंदूर तुम्हारा।

५

केवल रण ही कार्य हमारा, केवल रण ही कला हमारी।
और यही व्यापार हमारा, हम तो हैं रण के व्यापारी।
सूखे भले कलम की मसि, पर रक्त-भरी असि सूख न पावे।
वह अपनी भी और हमारे भी प्राणों की प्यास बुझावे।
बाँट, तराजू, खेती-बारी
करघे, चरखे, मिलें, खदानें।
सब को भूलें, चलें विश्व में
महासमर की आग लगाने।

६

कहीं विभव के शैल खड़े हैं, कहीं ग़रीबी की है खाई।
हम दोनों को करें बराबर, क्यों दे यह वैषम्य दिखाई।
कहीं मधुर रस-निर्भर झरते, कहीं तीव्र जलती है ज्वाला।
कहीं सुधा की सरिता बहती, और कहीं पर विष का नाला।
प्रिये, चलो इस दुनिया को हम
खोद-खाद हमवार बनावें।
जहाँ अबोध बना मानव को
शिशु-सा, भोले खेल खिलावें।

७

रेशम के झूलों को भूलो, याद रखो फाँसी की डोरी।
अपने या रिपु के जीवन का रत्ती भर मत मोल करोरी।
अब राखी के साथ श्रावणी के दिन तुम तलवारें बाँटो।
कहो बंधुओं से ,'प्राणों पर खेल जुल्म के बंधन काटो।'
सखि,सखियों से कहो, हिंडोले
छोड़ें और चढ़ें घोड़ों पर।
बरसें फूल समर-शूरों पर,
गिरे गाज अब रण-छोड़ों पर।

८

बिना शस्त्र छेदे छाती का खून चूस लेते जो सारा,
मुँह से बात निकलते ही जो हमें दिखा
जो कुरसी पर बैठ न्याय का बना बहाना हत्या करते,
शासन का ले नाम ग़रीबों का धन छीन खजाने भरते,
उनसे कहें सामने आओ,
तुम को सच्चा न्याय दिखावें।
यहाँ कपट-छल-छिद्र नहीं है,
हम भय का आवरण हटावें।

९

जो हम को डाकू कहते हैं, उनको कह लेने दो, बाले।
वे ही हैं अबोध प्राणों में भीषण आग जलाने वाले।
आज भुजंगों से बैठे हैं वे कंचन के घड़े दबाए।
विनय हार कर कहती है, ये बिषधर हटते नहीं हटाए।
ये फुफकार रहे दिखला कर
दो-दो जिह्वाएँ ज़हरीली।
इन्हें दिखाओ गर्व खर्व
करने वाली बिजली चमकीली।

१०

दीवाली के दिन खोपड़ियों में घी भर कर दीप जलावें।
दीपावली निराली जग से, बाले, हम इस बार मनावें।
होली के दिन रंग नहीं, हम लोहू से भर लें पिचकारी।
प्रिये, कुसुंबी नहीं, रक्त के रँग से साड़ी रँगूँ तुम्हारी।

छोटी-छोटी क्षणिक होलियाँ,
नहीं नगर-ग्रामों में बालें।
धू-धू करके विश्व जल उठे,
सब कुछ भस्म-सात कर डालें।

११

दुर्गे, मेरा डमरू लाओ, तुम अपनी खर-ताल उठाओ।
दिशा दिशाएँ झंकृत कर दो, सर्वनाश का राग बजाओ।
पुरुष रुद्र बन कर आ जावे, नारी काली बन कर आवे।
युग-युग से जो रिक्त पड़ा है वसुधा का खप्पर भर जावे।

महानाश के बाद विश्व का
नव-निर्माण करो, हे बाले।
ऊँच-नीच, सेवक-राजा के
जहाँ न होवें धब्बे काले।

मत छीनो मुझ से प्याला—

१

मत छीनो मुझसे प्याली, मत छीनो मुझ से झारी।
ओ मधुशाला के मालिक, ले आओ मदिरा सारी।
भूखे हैं घर में बच्चे, भूखी है घर में नारी।
क्यों रोक रहे हो मुझ को, मति मारी गई तुम्हारी।
भर-भर कर देते जाओ,
यदि होश तुम्हें है बाकी।
मतवाला समझ रहे हो
क्यों मुझको भोले साक़ी ?

२

है खाक जगत की छानी, अभिमान हो गया पानी।
हो रही बर्फ़ जाड़े से जम कर जीवन की रानी।
है छान चू रही घर की, बन गए मेघ हैं दानी।
दिल मेरा काँप रहा है, है रात आज तूफ़ानी।
क्यों नशा हिरन करते हो
तुम घर की याद दिला के।
क्या यहाँ न विष बिकता है,
ओ मालिक मधुशाला के?

३

वह रूप कि जिस के आगे अंबर का शशि शरमावे,
वे आँखें जिनसे कोई आँखें न मिलाने पावे,
वह हृदय कि जिसके आगे विस्तृत सागर सकुचावे,
वे हाथ कि जिनसे कोमल कमलों का रंग लजावे,
अपनी इज्जत रखने को
वह बसन न तन पर पावे,
बतलाओ, पीने वालो,
क्यों दिल न टूक हो जावे?

इस मदिरालय का मैंने था नाम न अब तक जाना।
मादक था मदिरा से भी बेहोश हृदय का गाना।
था ताना नभ में मैंने, गानों का ताना-बाना।
था अखिल विश्व का राजा मैंने अपने को माना।
वह मुकुट छिन गया मेरा
सम्मान लुट गया सारा।
दर-दर पर इस भिक्षुक को
अब जाता है दुतकारा।

५

अरमान जला कर सारे मधुशाला में आया हूँ।
मत पूछो, मोल चुकाने क्या दाम साथ लाया हूँ।
जीवित-जन मोल चुकाते, मैं तो केवल छाया हूँ।
चढ़ चुकी चिता पर जीती मैं वह जलती काया हूँ।
यह जलन शान्त करने को
तुम खूब पिलाओ, साक़ी।
मैं बचूँ, न मद बच पावे
बोतल न बचे मदिरा की।

६

मेरे अंतर में ज्वाला, मेरे प्राणों में ज्वाला।
अंगारे भर कर आती है आँखों में मधुबाला।
यह लाल लाल पानी भी है आग लगाने वाला।
तुम ज्वाला फूँके जाओ देकर प्याले पर प्याला।
पी-पी कर मदिरालय की
सीढ़ी पर सो जाने दो।
मैं पा न सकूँ अपने को,
अब ऐसा खो जाने दो।

७

अब घर जाकर क्या होगा, जो होना है हो लेगा।
डर जावेगा, जब कोई दरवाजों को खोलेगा।
चिर-निद्रा में होंगे सब, कोई न वहाँ बोलेगा।
कोई आदम का बेटा उन लाशों को ढो लेगा।
वे मिट्टी के पुतले हैं,
अब टूट रहे तो टूटें।
वे माया के बंधन हैं
अब छूट रहे तो छूटें।

८

मैं आग लगा दूँ जग में, मैं नोचूँ नभ के तारे।
मैं सागर को पी जाऊँ, मैं शैल उखाड़ूँ सारे।
पृथ्वी पर प्रलय मचाने, बढ़ जाऊँ बिना बिचारे।
पावें न कहीं तिनका भी, खग घूमें मारे मारे।
तुम मुझे सम्हालो, साक़ी,
मैं क्या करने वाला हूँ?
तुम मुझे बुझाओ साक़ी,
मैं खुद जलती ज्वाला हूँ।

९

दो दाने यदि दे देती, दुनिया का क्या घट जाता?
क्या छिनता, मरु-थल में भी यदि जलद नीर बरसाता?
क्या जाता, मेरी कुटिया में कोई दीप जलाता?
दो पैसे का भी कोई मुन्नी को दूध पिलाता?
तुम हँसते हो, मतवालो,
सुन-सुन कर दुख की बातें।
क्या दर्द ग़मी का जानें
जो करते रहे बरातें?

१०

वह झूम छनाछन होती, वह खूब खनाखन होती।
मैं पा जाता तो सच है, इस जगह दनादन होती।
मैं लुटा चुका हूँ सोना, मैं बहा चुका हूँ मोती।
पत्थर बन बैठी आँखें युग-युग से रोती-रोती।
दे सकते मेरे दिल को
अब शांति न आँसू खारे।
तुम मुझे पिलाओ मदिरा
ज्वालामय बिना विचारे।

११

तुम जेब न देखो मेरी, तुम भेष न देखो मेरा।
सब खड़े हुए हो मुझ पर बेकार डालकर घेरा।
मैं सच कहता हूँ चलकर तुम देखो मेरा डेरा।
तुम भी न दिखोगे जिसमें ऐसा है वहाँ अँधेरा।
जगने न सुनी, पर तुम तो
सुन लो मेरी मधु-बाले।
तुम चुरा-चुरा कर लाओ,
मैं पीता जाऊँ प्याले।

स्वर्ण-द्वीप

१

ज्योत्स्ना-सी उज्वलतम साड़ी पानी से हो जाय न गीली,
इसीलिए नौका में मेरे साथ न आई, प्रिये, हठीली।
मैं पतवार फेक कर, बाले, साथ तुम्हारे तट पर रहता,
बात तुम्हारी कौन जानता ? जग तो मुझ को कायर कहता।
मैं चल पड़ा अकेला, सजनी,
और सिंधु का तट भी पाया।
स्वर्ण-द्वीप पा लिया, मिला क्या,
मैंने तुम-सा रत्न गँवाया।

२

प्रिये, तुम्हारे लिए जगत के काँटों की सब चुभन सँभाली !
प्रिये, तुम्हारे लिए न जाने कितनी तीखी पीड़ा पाली !
मुझे देख कर मतवाला-सा देता था माली भी गाली।
एक दिवस देखा, तुम आई, भर लाई फूलों से थाली।
मेरे थके हुए प्राणों में
यौवन का तूफ़ान उठाया,
पतझड़ के पीले पातों में
तुम ने था मधुमास खिलाया।

३

मंदाकिनि-सी मंद-मंद तुम मधुर-मधुर कुछ गाती आई।
अपनी वही बसंती साड़ी लहर-लहर लहराती आई।
तुम अनान मुस्कानों में भर मद- पराग बिखराती आई।
तुम कलिका-सी खिलती आई, मेरा हृदय खिलाती आई।
फूल उठा मैं, भूल गया मैं
स्वागत करना, पूजा करना।
झरने लगा अचानक मेरी
दुनिया में जीवन का झरना !

४

स्वर्ग-लोक की तुम अप्सरि थीं, तुम वैभव में पली हुई थीं।
धन के आँगन में खेली, श्री के साँचे में ढली हुई थीं।
जिस पथ पर चलती थीं, उस पर बिछती पंखुड़ियाँ फूलों की।
नहीं जानती थीं तुम, बाले, चुभन जगत् के इन शूलों की।
तुम ने कवि का दिल ही देखा
और उसे ही समझा वैभव।
स्वर्ग छोड़, रौरव अपनाया,
ऐसा था यौवन का शैशव।

५

जिस दिन हाथ मिलाए हमने दिल की ज्वाला बनी गवाही।
मंत्र पढ़े नीरव आँखों ने संरक्षक थी लापरवाही।
भूमि और अंबर दोनों के छोर मिल गए गठ-बंधन में।
मिली अशीश नियति की हमको पहले ही पागल चुम्बन में।
तब से अपने पथ पर आए
हैं कितने भूकंप भयानक!
पर, अम्लान अभी तक अपने
प्राणों का वह पावन पातक।

६

दो दिन हमने खूब सुराही से मदिरा के प्याले ढाले।
भूल गए कि पड़े हैं हम भी इस बेदर्द जगत् के पाले।
खड़ा हुआ था दरवाजे पर नाश प्रलय का बज्र सँभाले।
बिजली-सी चमकी, हम चौंके फिर सुधि में आए मतवाले।

हमने देखा, नेह-नदी में
तिरने से तो जी न सकेंगे।
बिना दाम के, प्रिये, प्रेम की
मदिरा भी हम पी न सकेंगे।

७

जग का सत्य अचानक बोला, 'जागो, जीवन को पहचानो।
भूखे-प्यासे-निर्धन बन कर जीने को जीवन मत जानो'।
तुमने तब उतार दी सहसा विमल बसंती साड़ी प्यारी।
और सुराही पथ पर फेंकी, ली हाथों में जल की झारी।

बनी प्रेयसी तब पनिहारिन,
कवि बना गया कुली तब मिल का।
और पेटने छीन लिया तब
यौवन दोनों ही के दिल का।

८

तुम घर के धंधों से आहत, मैं मिल के श्रम से हो जर्जर।
एक खाट पर पड़ रहते थे, सो जाता था रस का निर्झर।
कब वसंत आता था जग में, कब कोयल गाती थी बन में।
दिन पर दिन ढलते जाते थे, कहाँ सोच पाते थे मन में?

सोचा, किसी दिवस तो होंगे
अपनी एक कुटी के स्वामी।
किंतु, हमारी अभिलाषा पर
हँसे निरंतर अंतर्यामी।

९

फूल-शूल-मय जग का तुमसे, प्रिये, न कोई अनुभव छूटा।
वैभव की कंगाली देखी, कंगाली का वैभव लूटा।
कंगालों के अश्रु-सिंधु में श्रीमंतों के यान निहारे।
तुम ने महलों की नींवों में दबने वाले प्राण निहारे।

तुम ने, प्रिये, प्रेम के बल पर
कालकूट को अमृत बनाया।
पर बतलाओ, चलने दें क्यों
यही विषमता की हम माया।

१०

हम में, प्रिये, बुद्धि है, बल है, साहस भी है, यौवन भी है।
इन महलों में आग लगा दें, प्राणों में वह जीवन भी है।
हम को ज़हर और उनको है अंगूरी हाला का प्याला।
वे मद-मस्त तराने छेड़ें, यहाँ ज़बानों पर भी ताला।
आज तुम्हारा कवि फिर जागा
और सिपाही बन कर आया।
लोहे से भी कड़ी हो गई
आज कुली की काली काया।

११

आओ, प्रिये, केश सुलझा दूँ, फूलों से शृंगार सजा दूँ।
एक बार फिर वीणा पर मैं यौवन की वह तान बजा दूँ।
वही बसंती साड़ी ओढ़ो, फिर से नववसंत आया है।
अब की बार, सुनो, फूलों में रंग शहीदी का छाया है।
तुम ने कवि को अपनाया था,
तुम को एक कुली भी भाया।
तो विद्रोही भी भावेगा,
मन में यह विश्वास समाया।

वसंती साड़ी—

१

आज पहन आओ तुम अपनी वही वसंती साड़ी, आली।
जिसको देख हुई थीं मेरी ये अबोध अखियाँ मतवाली।
वह वसंत का प्रथम प्रात था, पुष्पित थी जब डाली-डाली।
तुम तितली-सी फूल-फूल पर जब उड़ती थी, सजनि निराली।

तुम फूलों से खेल खेलती,
तब तुम में कितना बचपन था ?
मैं भी शिशु था, तुम्हें पकड़ने
को पागल मेरा भी मन था।

२

तुम को अपनी साड़ी-प्रिय थी, मुझे चाहिए थीं जय-माला।
तुम कीचड़ से बची और मैं चला हृदय को करने काला।
तुम उस तट पर बैठी, मेरे उर में रही जलाती ज्वाला।
तूफ़ानों से लड़ा पान कर मैं आकांक्षाओं का प्याला।
तुम को तो पावनता प्रिय थी,
मैं था, सखि, वैभव का भूखा।
इसीलिए तो अपना जीवन
रहा प्रेम के रस से सूखा।

३

तुमने कहा, "प्राण मत जाओ।" मैंने कहा, "प्रिये, मत छोड़ो।"
बोले स्वजन, "स्वप्न के पीछे मधुर स्नेह का सूत्र न तोड़ो।"
न तो साथ आई तुम मेरे और न मैं रुक पाया घर में।
आकुल आँसू पीकर मैंने नाव छोड़ दी, सखि, सागर में।
तुम बोली, "तुम कितने निष्ठुर?"
मैं बोला, "तुम, बहुत हठीली।"
बोले स्वजन, "कल्पनाओं की
तुम दोनों ने मदिरा पी ली।"

४

महल खड़े थे आसमान को छूने वाले, उनको देखा।
फिर झाँका अपनी कुटिया में, खिंची व्यथा की तीखी रेखा।
देखा सागर के उस तट से दुनिया स्वर्ण लिए आती है।
उनको देख-देख कंगालों की जलने लगती छाती है।

कल तक थे जो सखा हमारे
आज न हमसे हाथ मिलाते।
देख फटे-से वस्त्र हमारे
नफ़रत करते, हँसी उड़ाते।

५

मैं उछल पड़ा, "जगत से लड़कर स्वर्ण लूट कर ले आऊँगा।
तुम्हें भूषणों से सज्जित कर निरख-निरख कर सुख पाऊँगा।"
तुम बोली, "प्रिय, विभव-प्राप्ति की धुन में तुम संतोष न खोना।
इसे गँवा कर रह जाता है जीवन में रोना ही रोना।

प्रियतम, सोना तो कठोर है,
उसको पाकर क्या पाओगे?
डरती हूँ, तुम उसके पीछे
पड़कर खुद ही खो जाओगे।"

६

पूरी हुई न बात तुम्हारी, हुआ खनाखन शब्द कहीं पर।
"बसने का अधिकार नहीं है," सोचा, "रह कंगाल यहीं पर।"
सर्जनि, 'खनाखन' के शब्दों में सुन न सका तुम क्या क्या बोली।
तृष्णा ने मेरी नस-नस में सहसा विष की पुड़िया घोली।

तुम ने आँसू-भरी निगाहों
से मेरी तृष्णा को तोला।
फिर बेबसी भरे हाथों से
ममता के बंधन को खोला।

७

जो नौका मिल गई उसी पर चढ़ कर मैं लहरों से खेला।
और ले चला नाव जहाँ पर लगता है वैभव का मेला।
लहरें गरजीं, उनसे बोला, 'तुमको हूँ मैं बहुत अकेला।'
आँधी आई, तूफ़ानों ने ज़ोर किया, मैंने सब झेला।

पहुँच गया मैं स्वर्ण-द्वीप में,
किंतु, सिपाही ने पथ रोका।
"यहाँ काम क्या है तुम जैसे
फटेहाल भिक्षुक लोगों का।"

८

मेरे उर में आग जल उठी, मैंने छीन उसी का भाला,
छाती छेद, एक क्षण में ही काम तमाम वहीं कर डाला।
जिसके पास शक्ति होती है उसकी ही है स्वर्ण बपौती।
हाथ रक्त से रँग कर मैंने दी जग भर को, सजनि, चुनौती।

वस्त्र फेंक कर, नंगा होकर,
वसुंधरा पर खुल कर नाचा।
जिसने कहा, "होश में आओ।"
उसके जड़ता गया तमाचा।

९

मैंने कहा, "मूर्ख कपड़ों के भीतर सारा जग नंगा है।
जो खुल कर नंगा रहता है, धोखेबाजों से चंगा है।"
इसी समय लक्ष्मी ने आकर पहना दी मुझ को वर-माला।
फिर मेरे नंगे शरीर पर गौरव का पीतांबर डाला।

ऋद्धि-सिद्धि परियाँ भी आईं,
भर भर लाईं मद की प्याली।
भूल गया, तुम किए प्रतीक्षा
किस कुटिया में बैठी, आली।

१०

मुझ को स्वर्ण-द्वीप के लोगों ने तब अपना नृपति बनाया।
ताज उतार शीश से अपने लक्ष्मी ने मुझ को पहनाया।
लक्ष्मीवाहन ने भी सहसा सुन्दर मंगल-गान सुनाया।
उल्लू को मैना समझा था, मैं लक्ष्मी को घर की माया।

एक लहर आई जो पल में,
लूट ले गई वैभव सारा।
लक्ष्मी तो चंचल है उस को
कितने दिन मैं लगता प्यारा!

११

गया सिंधु के तट पर, "तल में चलूँ" अचानक मन में आया।
"यह तो कायरता है, प्यारे!" सुना किसी ने गाना गाया।
देखा, एक नाव पर बैठी तुम मुसकाती गाती आती।
सारे जीवन में न सुनी थी मैंने ऐसी मधुर प्रभाती।

आकर बोली, "चलो, प्राणधन,
फिर अपनी कुटिया में जावें।
महलों की बिजली तज, घर में,
चलो, स्नेह का दीप जलावें।

पंखी की पीड़ा-

१

पंखी एक पड़ा था पथ पर जिस में बाकी कुछ जीवन था।
कवि ने उठा लिया, दुलराया, उस की आँखों में सावन था।
सहसा पलकें खोली पंखी ने, पंखों में गति-सी आई।
कवि मुसकाया, उसकी आँखों में संतोष दिया दिखलाई।

नीरव नयनों ने पंखी के
कहा कि "तुम कैसे मानव हो!
मुझे प्यार करने में अपना
समझ रहे तुम क्यों गौरव हो!

२

"गीतों के निर्झर, कोमल कवि, मेरे पास भला क्यों आए ?
मुझ को भी गाना आता है, पर मैंने वे गीत भुलाए।
भुला दिया दुनिया ने मुझ को, मैंने उसकी भूल भुलाई।
मुझे पुनः जीवित कर तुमने फिर से मेरी मौत बुलाई।
दिल दुखता है, कवि, मत पूछो,
मुझ से जीवन का अफ़साना।
अगर सुनोगे तो भय मुझको
भूलोगे तुम अपना गाना।

३

"तुम व्याकुल हो, मुझे विसुध-सा पथ पर पड़ा देख एकाकी।
पूछ रहे हो, 'नहीं रहा क्या, आज तुम्हारा घर भी बाकी।'
मेरी वाणी सूख गई है, मेरे अश्रु जल चुके सारे।
कवि, न तुम्हारी तरह देखता दिन में आसमान के तारे।
मुझसे अब अपनी साँसों का,
बोझा उठता नहीं उठाए।
अब वह यौवन कहाँ कि शशि का
चुंबन लेने मन ललचाए।

४

'मैंने कभी नहीं गाए हैं इस दुनिया में ग़म के गाने।
साँझ-सवेरे छेड़ा करता था मुख से लयरेज तराने।
मैं संतोषी भोला पंखी चुग लेता था पथ के दाने।
सरिता का जल पी लेता था, मुझे चाहिए थे न खजाने।
जग ने ऊँचे महल बनाए,
पर मैंने कुछ बुरा न माना।
फिर उसको क्यों अखरा मेरा
किसी डाल पर नीड़ बनाना।

५

"मैं औ' मेरी विहगी रानी, एक-एक तिनका ला-लाकर,
सुखद बसेरा बना सके थे कितने ही दिन-रात लगाकर।
पर मनुष्य को बुरा लगा यह, क्यों उपवन में नीड़ बनाया?
एक सनक आई, क्षण भर में उसने मेरा महल गिराया।
तोप नहीं थी पास हमारे,
हमने सब चुप-चाप सह लिया।
दोनों ने, आँखों आँखों में
कहना था, चुपचाप कह लिया।

६

"क्या मानव, क्या विहग जगत् पर है अधिकार समान सभी का।
जिसमें प्यारे फूल सजाए प्रभु ने वह उद्यान सभी का।
हमें नहीं भाया उपवन का वास छोड़ कर वन को जाना।
वैसे तो वन के वासी हैं, पर मानव का हुक्म न माना।

अखिल विश्व अधिवास हमारा,
जहाँ करें जी नीड़ बनावें।
क्यों मानव के बंदी बनकर,
बैठें, उठें, हँसें या गावें।

७

"हमने पुनः परिश्रम करके वही दुबारा नीड़ बनाया।
जब मानव आया तब उसका ध्यान खींचने गाना गाया।
वह था शक्तिवान उसको भी वह अपना अपमान न भाया।
लौट पड़ा आँखें तरेर कर, फिर पिस्तौल उठाकर लाया।

मैं दाने लेने निकला था,
बिहगी रही अकेली भोली।
उसकी नन्ही जान भुन गई
लगते ही मानव की गोली।

८

पंख थक गए अब मेरे भी, जीवन में अब जान नहीं है।
जिसमें साँसें उलझ रही थी, मेरा वह सामान नहीं है।
वक्त बदलते दुनिया बदली, स्वजनों में सम्मान नहीं है।
अब मुझसे कहते हैं, 'पागल' तुमसे तो पहचान नहीं है।

सूने पथ पर पड़ा हुआ था,
घर का नाम-निशान नहीं है।
मैं एकाकी मेरा जग में,
आज किसी को ध्यान नहीं है।

९

"कभी सोचता था मैं मन में गीतों का आकाश बनालूँ।
मैं उल्लास-सुरा को पीकर पतझड़ को मधुमास बनालूँ।
मेरे पंख तड़पते रहते जीवन को उच्छ्वास बनालूँ।
सदा हृदय चाहा करता था शशि को अपने पास बुलालूँ।

वे सपने सब स्वप्न हो गए,
कैसे अपनी साँस सँभालूँ।
जहाँ न जाय किरण आशा की
क्यों न वही अधिवास बनालूँ।

१०

कवि ने कहा कि, "सच है दुनिया जलती हिंसा की ज्वाला में।
भेद नहीं है, आज सर्प में और गले की वरमाला में।
आज स्वजन ही गला काटते, किससे बचकर चलें यहाँ पर?
सभी जगह तलवार तन रही बच कर जावें कहो कहाँ पर?

नित्य नए शस्त्रास्त्र बन रहे,
है भयभीत सभ्यता सारी।
पंखी केवल तुम पर ही क्या,
आज विश्व पर विपदा भारी।

११

"जब से स्वार्थ घुसा प्राणों में हिंसा नस-नस में है छाई।
भाई के लोहू का प्यासा आज दिखाई देता भाई।
पंखी, नीड़ तुम्हारा ही क्या, सभी ग़रीबों के घर लुटते।
आज मानवों को खाने को दो दाने भी सहज न जुटते।

पर यह सब कृत्रिम उबाल है,
इसका दौरा चल न सकेगा।
हिम्मत मत हारो यह जग फिर,
प्रेम-पंथ की ओर मुड़ेगा"।

मूक ज्वाला-

१

अभी रणस्थल से आया हूँ, फिर प्रभात होते जाना है।
ज्ञात नहीं, इन आघातों से कब अवकाश हमें पाना है।
रोज़ सवेरे उठकर, सजनी, गुँथती हो फूलों की माला।
ठहर नहीं पाता क्षण भर भी माला को अपनाने वाला।

मौन पड़ी हैं इन प्राणों में
युग-युग से कितनी ही बातें।
रण की श्रांति छीन लेती है
कितनी ही उन्मादिनि रातें।

२

तुम मेरे घावों को धोतो आँखों में भर-भर कर पानी।
आँखें मूँद पिया करता हूँ, प्रिये, तुम्हारी मूक कहानी।
बन-सरिता-सी बहती जाती निर्जन में नादान जवानी।
समय नहीं इतना भी सुनलें हम अपने प्राणों की वाणी।

मैं विद्रोही सैनानी हूँ,
अलभ लक्ष्य का दीवाना हूँ।
मुक्ति-मूर्ति की दीप-शिखा पर,
जलने वाला परवाना हूँ।

३

निशि में शशि आता मुसकाता, प्राणों में तूफान उठाता।
ज्योत्स्ना की चादर फैलाकर घर के बाहर हमें बुलाता।
किसी कुंज की ओर हमारे चरण अचानक चल देते हैं।
हम नीरव रह प्रकृति-परी की रूप-माधुरी पी लेते हैं।

फिर भी नहीं आवरण अपने
प्राणों का हटने पाता है।
जग-पथ में क्यों साथ हुए हम
हृदय नहीं कहने पाता है।

४

कभी रात के अँधियारे में, श्रम से थका परजित प्राणी।
शैया पर पड़ रहता, करता हूँ जब निद्रा की अगवानी।
तब तुम उठ कर ले आती हो रस बरसाने वाली वीणा।
तीक्ष्ण बाण-सी तान छेड़ती, कलकंठिनि, अयि कला-प्रवीणा।
तब भी, प्रिये, मूक रह कर मैं
पीता रहता गीत तुम्हारे।
अलग-अलग चकवा-चकवी से
हृदय निरंतर रहे हमारे।

५

कभी निराशा की छाया से, मेरा मन उदास हो जाता।
जब निद्रा न बुलाए आती और जागरण हृदय दुखाता।
तब तुम चुपके चुपके उठ कर मदिरा की प्याली भर लाती।
मदिरा की प्याली भर लाती, फिर चुपके से हाथ बढ़ाती।
मेरे हाथ अचानक बढ़कर
ले लेते हैं, पी लेते हैं।
प्राण नशे की दुनिया में जा
नवजीवन पा जी लेते हैं।

६

युग-युग से जो अत्याचारों से मैं युद्ध ठानता आया।
दुनिया विमुख हुई, पर फिर भी मैं न घड़ी भर भी घबराया।
तुम्हें पता क्या, तुम से ही तो मैंने इतना जीवन पाया।
किन्तु तुम्हारे ही जीवन को जीवन का उपहास बनाया।
एक घड़ी भी, कभी, तुम्हारी,
आँखों में संताप न छाया।
प्रिये, तुम्हारे मूक स्नेह ने
सतत शान्ति-संगीत सुनाया।

७

प्रिये, नरक बन गया जगत तो, यहाँ प्रेम कैसे खिल पावे।
हम कंगालों की दुनिया में, सुख का हास कहाँ से आवे।
अगर चली जाओ तुम तम में तो प्रकाश सहसा छा जावे।
सिंधु देख पावे तो सहसा चरण चूमने को लहरावे।
ऐसा रत्न आज निर्धन के
घर में अपना मूल्य घटाता।
किन्तु, न जग के उपहासों से
उसका रूप म्लान हो पाता।

८

जब अपनी कुटिया में धीमा-धीमा जलता दीप लजाता।
महलों में विद्युत-प्रकाश तब इन प्राणों में आग लगाता।
राज्य, बनिज, कानून आदि के आज बिछा कर ताने-बाने,
लूट रहे हैं हमें लुटेरे, हम लुटते जाते अनजाने।
वे तो रखते अस्त्र-शस्त्र हैं,
सेनाएँ, भण्डार खजाने;
हम निश्शस्त्र चले जाते हैं
परवानों से प्राण गँवाने।

९

हमको भी आता है सुख से रहना, सुख से खाना-पीना।
किन्तु असंभव आज होगया, दुख का भार उठाए जीना।
मुझे विषमता से दुनिया की अगर न लोहा लेना होता।
तो निश्चित था कभी न प्राणों का मैं इतना बोझा ढोता।
तुमने मेरी अभिलाषा को
समझा मेरी राह न रोकी।
विजय-पराजय दोनों में ही
मेरी पीठ सदा है ठोकी।

१०

समर-भूमि की ओर निरन्तर करते मेरे प्राण इशारा।
तुम भी भरती रहती मेरे प्राणों में नव-जीवन-धारा।
देवि, जगत् को स्वर्ग बनाने तुमने अपनी कुटी उजाड़ी।
मूक लोचनों ने अब मुझको बना दिया है कुशल खिलाड़ी।

तुमने अपना जीवन-दीपक
सा अविराम जलाया, बाले।
अपना हृदय चूर कर उसकी
मदिरा बना पिलाए प्याले।

११

मिट जावेंगे एक दिवस सब सूर्य, चन्द्र, अंबर के तारे।
किन्तु शून्य के अँधियारे में सदा जिएँगे प्राण हमारे।
प्रिये, लुटेरों ने खुल खिल कर जीने दिया न इन प्राणों को।
अवसर मिला नहीं जो गाते खुल कर यौवन के गानों को।

एक मूक ज्वाला सुलगा दी
हमने वसुधा भर के मन में।
किसी दिवस वह फैल जायगी
अवनि-गगन में, भुवन-भुवनमें।

चिनगारी-

१

आज, प्रिये, जीवन के पथ पर चारों ओर अँधेरा छाया।
घोर घटाओं ने घिर नभ के तारों को अनजान छिपाया।
तूफ़ानी लहरों पर अपनी तरणी डग-मग डोल रही है।
सर्व-नाश की वाणी सागर के गर्जन में बोल रही है।

और निकट आओ हम तुम में
अंतर्तम की गाँठें खोलें।
पुतली में अतीत को भर कर
आँखों के पानी से धोलें।

२

फूल-शूल-मय जीवन पथ पर साथ-साथ तुम आई, बाले।
खिसक गए सब साथ निभाने का हरदम दम भरने वाले।
आज प्रिये, तुम हो या तम है और नहीं है कोई मेरा।
प्रलयंकर लहरों के ऊपर आज तुम्हारा अस्थिर डेरा।
प्रिये, तुम्हारी दो आँखें ही
जीवन में प्रकाश भरती हैं।
निविड़ निराशा की निशि में
नव-आशा संचारित करती हैं।

३

संग धैर्य्य ने छोड़ दिया पर तुमने मेरा साथ न छोड़ा।
बार-बार टूटी साँसों का तुमने हँस-हँस धागा जोड़ा।
हाथ पकड़ कर खड़ा किया फिर रण-सज्जा से मुझे सजाया।
"कायरता ही, प्राण, मृत्यु है" बार-बार यह पाठ पढ़ाया।
"मरते हुए जियो मत, प्रियतम,
जीते हुए भले मर जाओ।
अंतिम क्षण तक विद्रोही रह,
नहीं किसी को शीश झुकाओ।

४

"जब से पैदा हुए न हमने एक घड़ी भी सुख को जाना।
कितना कठिन पेट की खन्दक भरने को दो दाने पाना।
मुट्ठी भर लोगों ने जग का लूट रखा है सभी खजाना।
आज व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है, आज बदलना हमें जमाना।
इन विपरीत भयंकर लहरों
में चिंता क्या हम खप जावें,
आने वाली पीढ़ी को भी
यदि साहस का मार्ग दिखावें।

५

"अब घर-द्वार नहीं है अपना, अब सुख का सामान नहीं है।
प्राणों में यौवन-मद की अब छिड़ती मादक तान नहीं है।
यदि पथ में मैं भी बाधक हूँ तो मुझको भी जहर पिलादो।
ओ विद्रोही, अपने दिल पर ममता का भी भार न लादो।
निर्मम बनकर आज विषमता
के नियमों में आग लगादो।
पथिक, अकेले ही इस पथपर,
चिंता क्या है, बढ़ते जाओ।"

६

प्रिये, तुम्हारे प्रोत्साहन ने इस जीवन में आग लगाई।
अपनी छोटी-सी कुटिया थी, हमने उसको धता बताई।
आश्रयहीन बने दुनिया में आज घूमते हम आवारा।
सतत प्रतीक्षा करता रहता मुँह खोले शासन का कारा।
प्रिये, सत्य का पथ है अपना,
फिर भी छिप कर रहना पड़ता।
अपनी छोटी सी हस्ती का
काँटा आँखों में है गड़ता।

७

आँखों में मदिरा, साँसों में, सखि, अनन्त मधुमास छिपाए।
आई थी सौंदर्य्यमयी तुम प्राणों में उद्यान खिलाए।
इस ग़रीब कवि के प्राणों में आकांक्षा की आग लगाने।
हृदय चाहता सदा तुम्हारे नक्षत्रों से साज सजाने।
कोमलता की मूर्ति, प्रिये, तुम
तुम पर विश्व-विभव चढ़ जावे।
'तुम्हें उचित आदर दे पाया'
मेरा मन सन्ताप न पावे।

८

मैंने देखा पास हमारे महल खड़े हैं भारी-भारी।
उनके आगे एक व्यंग सी दीख रही है कुटी हमारी।
जब तक प्रिये अकेला था मैं, मैंने यह वैषम्य न जाना।
बुनता रहता था एकाकी मैं गीतों का ताना-बाना।
जिस दिन था कुटिया में आकर,
तुमने अपना रूप दिखाया।
'निर्धनता है पाप' उसी दिन
मैं ने यह अनुभव कर पाया।

९

मैंने कहा, 'तुम्हें इस कवि की कुटिया कैसे पाल सकेगी!
अभिलाषाओं के प्यालों में कैसे मदिरा ढाल सकेगी!
महलों की बिजली को कैसे पर्ण-कुटी में भला जलाऊँ!
व्यर्थ अभावों की ज्वाला में क्यों कोमलता को झुलसाऊँ!
तुमने कहा, 'शाँत, कवि, मैं तो
जान-बूझकर ही आई हूँ।
पागल प्राणों में भीषणतम
मैं भविष्य भरकर लाई हूँ।

१०

"जो सुख की शैया पर सोते, मुझको उनसे काम नहीं है।
मुझे उन्हीं से कुछ कहना है जिन्हें प्राप्त धन-धाम नहीं है।
मुझे उन्हें आँखें देनी हैं निज अभाव जो देख न पाते।
जो जुल्मों को भाग्य समझ कर निर्विकार हो सहते जाते।

मुझे विभव का क्या करना है,
मैं तो उसका नाश करूँगी!
आज तुम्हारे प्राणों में मैं
सर्वनाश का राग भरूँगी!"

११

उस दिन से अब तक हम अपनी नौका लिए जगत् में फिरते।
हृदयहीन वैभव के हम पर बार-बार हैं गोले गिरते।
हमने जन-जन के मन-मन में रखदी चुपके से चिनगारी।
चिंता क्या है, आज घिरी जो चारों ओर घनी अँधियारी।

हम मिट जावेंगे पर अपनी
यात्रा सदा रहेगी जारी।
अन्तिम गीत, प्रिये गाने की
आओ आज करें तैयारी।

सर्वनाश की होली—

१

किसे सुनाऊँ गीत प्रीति के कौन हृदय है सुनने वाला?
एक घड़ी भी स्वप्न-जगत् में ताने-बाने बुनने वाला।
यहाँ मिलाकर ज़हर स्नेह में, प्रिये, पिलाता है छल-प्याला।
गला घोंटना चाह रही है आज गले की ही वरमाला।

कैसा गीत, सजनि, जी करता
अभी तँबूरे से सर फोड़ूँ।
हृदयहीन दुनिया से अपना
रहा-सहा भी नाता तोड़ूँ।

२

हमने हृदय चूर कर डाला और अग्नि पर उसे तपाया।
नीरस जग को जीवन देने उसका आसव मधुर बनाया।
हमने निज अस्तित्व मिटाकर औरों का उद्यान खिलाया।
स्वाद बने, सखि, घृणित बने हम, अपना रूप कुरूप बनाया।
फिर भी एक घड़ी इस जग को
है अपना विश्वास न आया।
हम अपनत्व बढ़ाने पहुँचे,
उसने निष्ठुर बन ठुकराया।

३

कौन देखता है, सखि, अपनी वाणी में विहगों का कूजन।
पार्थिवता ने चढ़ा रखी है आँखों में स्वार्थों की सृजन।
वन-पथ पर करती जाती हैं सरिताएँ भी अविरल क्रंदन।
आज स्नेह का नहीं विश्व में होता है सच्चा पूजन।
यहाँ हमारा काम नहीं है,
पास हमारे दाम नहीं है।
कंगालों के लिए विश्व में
बना कहीं आराम नहीं है।

४

यह माना कि सदा से ही हम नहीं रहे थे दीन भिखारी।
मिट्टी समझ लुटा दी हमने जग को अपनी दौलत सारी।
बूँद-बूँद देते रहने से आज चुक गई सारी झारी।
एक बूँद जब जग से माँगी उसने मारी तेज़ कटारी।

घायल दिल की करुण कहानी
जिससे कहते वह हँसता है।
बिच्छू सा अपमान निरन्तर
प्राणों को रहता डँसता है।

५

किसी कुंज में जाने में अब पीड़ित मन डरता रहता है।
सरल फूल भी हँसी उड़ावेंगे यह दुखिया दिल कहता है।
वहाँ बैठने देना हमको कोई माली कब सहता है।
जिधर बहावे ज़र उसको अब उसी ओर वह भी बहता है।

बिकने लगे फूल उपवन के
उनमें पहला प्यार नहीं है।
मोल-तोल है बहुत जगत में,
किन्तु मुक्त अभिसार नहीं है।

६

सजनि, गान का मोल पूछने जब कोई गुणज्ञ आ जाता।
अपना गला घोंट लेने को तब सहसा है मन अकुलाता।
'बना कला को भी बाज़ारू', कला नई ही जगत् सिखाता।
'क्यों चुप-चाप अकेले में तू अपने दुख के गाने गाता।
अपने हाथों हटा-हटा कर
कपड़े, अंग-अंग दिखलाओ।
छवि सुन्दर है तो बदले में
उसकी पूरी कीमत पाओ।'

७

बहुत रह चुके ज़हर भरी इस दुनिया में अब रह न सकेंगे।
प्रिये, पराएपन की मदिरा पी-पी कैसे प्राण छकेंगे।
घर में बैठे इस अभिनय को हम कैसे चुप-चाप तकेंगे।
दौर मिटेगा नहीं जगत् का अपने सारे यत्न थकेंगे।
सदा भिखारी से भी बदतर
यहाँ हमारा मान रहेगा।
जग को अपना एक अकिंचन
सिक्के से कम ध्यान रहेगा।

८

धन के मद में मत्त जगत् क्या कहता है सुन तो लो, रानी।
आज हाट में बेच तुम्हें भी, बेचूँ इन आँखों का पानी।
हाय, भूख से तड़प तड़प कर रोटी माँगी की नादानी।
उसके बदले में दुनिया ने इज्जत ले लेने की ठानी।
दुनिया क्या है, वेश्यालय है,
कहाँ रहें अब इज्जत वाले।
यहाँ वही रह सकता है जो
पीता बेशर्मी के प्याले।

९

सुनते हैं, यह जगत् वही है, जहाँ बुद्ध औ' ईसा आए।
इसी जगत् में कभी कृष्ण ने थे गीता के मंत्र सुनाए।
यहीं मोहम्मद ने आकर थे बंधु-प्रेम के भाव जगाए।
यहीं कला के चरणों पर थे राजाओं ने मुकुट चढ़ाए।
यहीं स्वार्थ-लोलुपता, हिंसा,
नंगी होकर नाच रही हैं।
अब न सहेंगे, बहुत दिनों तक,
हमने इनकी मार सही है।

१०

आज जगत् तो, प्रिये, प्रेम की दुनिया का है खून कर रहा।
सौख्य, शांति, संतोष छोड़ कर वह अशांति के लिए मर रहा।
वह कंगालों के लोहू से अपने सुख का पात्र भर रहा।
अखिल विश्व के कण-कण से है हिंसा का ही ज़हर झर रहा।
बोलो, इस में कैसे अपने
प्राणों का आसव हम ढालें।
सर्वनाश की होली के
संमुख अब कैसा दीपक बालें!

११

अविश्वास, बस अविश्वास ही इस दुनिया का मंत्र बना है।
भाई-भाई में दो टुकड़ों पर भीषणतम युद्ध ठना है।
मानवता बेचारी रोती बात-बात पर शस्त्र तना है।
व्यवहारों के भीतर देखो कृत्रिमता का रँग कितना है।
तहस-नहस कर दे दुनिया को
ऐसी लहर नहीं क्यों आती?
मेरी अपमानित वीणा है
महाक्रान्ति को नित्य बुलाती।

महाक्रान्ति का घूंघट खोलो-

१

अब प्रयत्न करने पर भी तो नहीं सम्हलती अन्तर्ज्वाला।
मानो, एक सुप्त ज्वालागिरि छाती चीर धधकने वाला।
जग ने अपमानों का ईंधन डाल जलाई भीषण होली।
कंगालों के कंकालों पर चढ़ आई गिद्धों की टोली।
इस दुनिया में, प्रिये, ग़रीबों
का जीना आसान नहीं है।
उस जीने में सार नहीं है
जिस जीने में जान नहीं है।

२

नन्हें-नन्हें से प्राणों पर टूट रहे हैं वज्र भयंकर।
विष से बुझे तीक्ष्णतम हम पर छूट रहे हैं तीर निरंतर।
जो गलबाँही डाले रहते, छूट रहे वे साथी सारे।
कौन प्रलय की बेला में है आने वाला साथ हमारे।
स्वजन हँस रहे, "इन दीवानों
ने यह उचित दंड पाया है।
खूब हुआ जो इन्हें मिटाने
महानाश का शर आया है।

३

जिनको हम निष्ठुर कहते हैं, वे हमको कृतघ्न बतलाते।
लेखा खोल-खोल कर पिछला वे हम पर अहसान जताते।
अपनी भरी हुई थाली से जो टुकड़े डाले थे आगे,
उनकी याद दिला कर कहते, "तुम हो बेईमान, अभागे!"
क्या बतलावें, प्रिये, जगत् ने
हम को पशु से बदतर माना।
सब कुछ छीन लिया है फिर भी
ताने देता हमें जमाना।

४

बहुत दिनों तक हमने भी तो इस दुनिया के राज न जाने।
कैसे दर्द भरे होते हैं दुखियों के दिल के अफ़साने।
जब तक रोटी मिली न हमने भूखों की आहों को देखा।
पढ़ न सके थे तब तक हम भी दुनिया के जुल्मों का लेखा।
सुख की एक साँस लेना भी
हुआ यहाँ पर आज असंभव।
वहाँ स्वर्ग के साज सजे हैं
यहाँ राज करता है रौरव।

५

वहाँ अप्सरा नाच रही है, यहाँ मौत का ताण्डव जारी।
वहाँ सुरा का दौर चल रहा, यहाँ गरल पीने की बारी।
वे छवि का सौदा करते हैं, यहाँ फूल कुम्हलाए जाते।
वे फूलों को कुचल-कुचल कर अट्टहास करते इठलाते।
दो पैसे में ही मानवता
अपनी इज्ज़त बेच रही है।
जिससे बेशर्मी लज्जित हो
बनी सभ्यता आज वही है।

६

शासन है, कानून-नियम हैं, पर हैं सब पैसे वालों के।
ये साधन हैं जिन से छीने जाते हैं हक़ कंगालों के।
कानूनों ने सत्य-अहिंसा को अपराध बना है डाला।
जो सच्चे वे चोर कहाते, जग का है व्यवहार निराला।
रोटी की भी माँग किसी से
करना है विद्रोह कहाता।
प्रिये, अभावों को भी पूरा
करना डाका समझा जाता।

७

अन्यायों के महलों को हम बने रहें नीवों के पत्थर।
दबे रहें हम सदा भूमि में कभी न झाकें नज़र उठा कर।
जोत-जोत कर खेत लगा दें अपने जीवन का रस सारा।
अपने लिए न कुछ भी रक्खें भरदें उनका ही भंडारा।
हम तो हवा खायँ, जल पीलें,
नहीं अन्न का हम से नाता।
होता अन्न भाग्य में अपने
क्यों न हमें विधि सेठ बनाता।

८

मुँह से आह निकल जावे तो प्रस्तुत है शासन का कारा।
घुटता ही रहता प्राणों में युग-युग से अभिमान हमारा।
भूल गए हम भी जीवित हैं, भूल गए साँसों में बल है।
देख नहीं पाते हैं अपने साथ असंख्य जनों का दल है।
एक एक ईंधन की लकड़ी
अलग-अलग क्यों, मुलगें बोलो!
जलें साथ मिल, लपटें लपकें,
महाक्रांति का घूंघट खोलो।

९

मत सिसको, मत अश्रु बहाओ, मत अपना अपमान कराओ।
तुम से कौन-कौन हैं, सबको कर आह्वान निकट ले आओ।
गरज पड़ो सिंहों से रण में अन्यायों के कोट गिराओ।
जो नभ पर रहने वाले हैं उन्हें खींच कर भू पर लाओ।
ये कानून-नियम हिंसा का
पथ प्रशस्त करने वाले हैं।
जागो, अपनी मौत स्वयं वे
अब सत्वर मरने वाले हैं।

१०

प्रिये, उठा दो मेरी वीणा, अब मेरा स्वर रुक न सकेगा।
क्षिप न सकेगा, बँध न सकेगा, मुड़ न सकेगा, झुक न सकेगा।
तान-तान में महाप्रलय की ज्वाला होगी, लपटें होंगी।
जिसकी झुलस सम्हाल सकेंगे नहीं जनन् के कपटी-ढोंगी।
हम मजलूमों को कतार में
प्रिये, खड़ा करने आए हैं।
प्राणों में प्रतिशोध-भावना
भीषणतम भरने आए हैं।

११

हम वे नहीं कि जिनको दुनिया कुचल-कुचल कर चलती जाए।
हम वे नहीं कि जिनका मस्तक कभी न ऊपर उठने पाए।
आँखों में, प्राणों में, दिल में, नस-नस में उन्माद जगाएँ।
ऐसा प्रलय-गीत गाएँ जिस से दुनिया में आग लगाएँ।
महाक्रान्ति की देवि कालिका
प्राणों के स्वर में अब बोले।
मजलूमों की आँखों में अब

सर्वनाश के समय—

१

आसमान में वज्र चमकता, लहरें लहराती सागर में।
सर्वनाश की बजी भैरवी अनायास ऊपर अंबर में।
काँप उठे हम, उलट न जाए आज हमारी जर्जर नौका।
बिरला ही आता सहने को सर्वनाश का निष्ठुर झोंका।

वह साथी जिस पर कि, सजनि री,
जीवन को अभिमान रहा है,
खड़ा-खड़ा उस तट पर अविचल
चाप व्यङ्ग के तान रहा है।

२

ज्योतिष नहीं जानते थे हम, पढ़े नहीं अम्बर की भाषा।
दुर्दिन में सागर के ऊपर ले आई अदम्य अभिलाषा।
जिन वृक्षों से लकड़ी लेकर हमने अपनी नाव बनाई,
कहते—"तुम डूबो, पर हमको अपनी लकड़ी दे दो, भाई।"

प्रिये, घिरे हैं हम लहरों से
कैसे यह ऋण उन्हें चुकाएँ?
हमें डूबते देख अचानक
व्याकुल हैं कैसे समझाएँ?

३

फूलों के संग खेल-खेल कर काटा हमने अपना बचपन।
गए नहीं थे सिन्धु-किनारे सुनते कहाँ प्रलय का गर्जन।
पर, यह मन तो बचपन से ही रहता था सपनों के जग में।
पता किसे था काँटे होंगे इतने उन सपनों के मग में।

प्रिये, चले थे जब हम अपने
सपनों को आँगन में लाने,
चाँद चमकता था, घिर आए
इतने घन नभ में अनजाने।

४

सजनि, हमारे आगे-आगे वे जहाज पर जाने वाले,
हमको डगमग देख, व्यङ्ग से हँसते, पी शराब के प्याले।
उनमें है सामर्थ्य, आज भी वे आनन्द मनाते, गाते।
लहरों के झोंके हैं उनके मनको नहीं हिलाने पाते।
छोटी-सी नौका ले हमने
है पोतों से होड़ लगाई।
और बीच में आँधी-वर्षा
सहसा सर्वनाश ले आई।

५

साधनहीन सदा से थे हम, कैसे बड़े जहाज बनाते।
महा प्रलय की निष्ठुर लहरों से टकराकर जो मुसकाते।
हमें प्राप्त था अभिलाषा-बल जिसने है नौका बनवाई।
उसने ही है सर्वनाश की लहरों से मुठभेड़ कराई।
लहरें कहतीं, मूर्ख, छोड़दो
अपनी ये हलकी पतवारें।
इनसे काट नहीं पाओगे
सर्वनाश की निष्ठुर धारें।

६

अपनी छोटी सी कुटिया में, प्रिये, तृप्ति का दीप जलाकर,
हम रहते थे अभिलाषाएँ ले आई हैं यहाँ बुलाकर।
कहता था विज्ञान रात-दिन कानों में कुछ ऐसी बातें।
भार हो गए जिससे हमको सुखद दिवस औ' मङ्गल रातें।
कविता की पोथी को मैंने
फेंक कुल्हाड़ी तेज उठाई।
अपने ही हाथों से श्रम कर
यह छोटी-सी नाव बनाई।

७

तुम भी साथ हुई सागर में जिस क्षण मैंने नौका छोड़ी।
जाने कितना सोना लाई चन्द्र-किरण थी, छली, निगोड़ी।
तुमको तब भी बरजा था, सखि, भूमि नहीं यह सागर चञ्चल।
साथ न आओ, सह न सकोगी, इसकी लहरों की तुम हलचल।
जब विपत्ति के मेघ घिरेंगे,
भय से तुम मुझको कस लोगी।
बन्धन बन पतवार चलाने
में, सहचरि, तुम बाधा दोगी।

८

'तुम से पृथक' कहा तब तुमने, 'मेरा तो अस्तित्व नहीं है।
मुझ से पृथक तुम्हारा भी तो प्रियतम कुछ व्यक्तित्व नहीं है।
ऐसा कोई युद्ध न ठानो जिसमें मैं भी बनूँ भार, प्रिय!
तुम जी लोगे, पर मैं अबला जी न सकूँगी बिना प्यार, प्रिय!

जब पतवार चलाओगे तुम
मैं उत्साह-गीत गाऊँगी।
मुझको भूलोगे विपत्ति में
मैं यह बात भुला डालूँगी।'

९

अब क्यों पछतावा आँखों में सुनो नहीं दुनिया की बातें!
सदा नहीं रहने वाली हैं, सजनि, भयानक दुख की घातें।
आसमान का चाँद छिपा तो क्या है, तुम मुसकाओ, रानी!
मेरे चाँद! तुम्हें मुसकाते देख, बनें आँखें दीवानी।

सावन-भादों की न बदरिया
अपनी आँखों में भर लाओ।
तुम से मुझको छीन सकेंगी
क्या ये लहरें तुम बतलाओ?

१०

ये आँधी, तूफान हजारों बार उठेंगे जीवन-पथ पर।
साहस छोड़ न देना होगा सर्वनाश के स्वर से डर कर।
माना, सखि, तूफान भयङ्कर और हमारी नौका जर्जर।
किन्तु, हृदय में कोई गाता, "करो कर्म अविराम निरन्तर।"

प्रिये, तृप्ति का दीप जलाकर,
अपने घर में बैठे रहना,
इसको तो आलस कहते हैं,
यही वीर पुरुषों का कहना।

११

आज हमारे ऊपर छाई यह माना कि मरण की छाया।
किंतु, सदा जीवित रहने को कौन देवता जग में आया।
प्रिये, आखिरी क्षण तक आओ, हम लहरों से युद्ध करेंगे।
जिये युगों तक यत्न हमारा ऐसी उज्वल मौत मरेंगे।

साधनहीन भले ही हों हम,
किन्तु, साधना में क्यों कम हों।
महा प्रलय से भी लड़ने को
रहते प्रस्तुत प्रतिपल हम हों।

पीड़ा का पर्दा-

१

आज तुम्हें क्या हुआ, प्रिये, जो मुझसे कहती, "गीत सुनाओ,
वीणा की झंकारों को भी घायल दिल का दर्द पिलाओ।"
व्यथा हृदय की तुमसे, बाले, छुपी हुई है, क्या बतलाऊं।
फिर क्यों कहती हो, "पीड़ा का पर्दा, प्रियतम, आज उठाओ।"

दबी पड़ी रहने दो मेरे
दिल की बातें दिल में, रानी!
गिरि-शृङ्गों से ठोकर खाकर
व्यर्थ लौट आवेगी वाणी।

२

हमने जो विद्रोह किया है, तूफ़ानों से रण है ठाना।
सारे अभिशापों को सर पर लादे हुए पार है जाना।
लाल-लाल आँखें दिखलाता रात-दिवस बेदर्द ज़माना।
किस आशा से कहूँ आज मैं उससे जीवन का अफ़साना।
तुम हो, प्रिये, और है मेरी
मदिरा से भरपूर सुराही।
और कौन है जो दे मुझको
आज मुरादें मन की चाही।

३

जगत् कह रहा बड़े स्नेह से, "मूर्खराज, उस ओर न जाओ।
शस्त्र उठाओ मत, तुम केवल अपना मादक गान सुनाओ।
तुम जो हो बस रहो वही, मत व्यर्थ हवा में महल बनाओ।
कहाँ फेंक दी मादक वंशी उसका जादू पुनः दिखाओ।
आह, प्रिये, वे समझ रहे हैं,
मुझको दुर्बल कायर प्राणी।
काँटों सी चुभ रही हृदय में
उनकी स्नेह भरी-सी वाणी।

४

यह माना कि परिश्रम से थक बूढ़ी-सी हो चली जवानी।
जब सूना होना आँखों में बरबस भर आता है पानी।
महारथी भी करते इस पथ पर आने में आना-कानी।
फिर भी रोके रुक न सकी हैं चपल लालसाएँ दीवानी।
कोई नहीं जान पाया है
अंतर का तूफ़ान, सखी री!
अभिलाषाओं की ज्वाला में
जलते मेरे प्राण, सखी री!

५

हँसते हैं सम्राट, "चला है राज जमाने आज भिखारी।
आसमान के तारे लाने की, की बौने ने तैयारी।"
आज व्यंग की वस्तु बनी है दुर्बल प्राणों की लाचारी।
तूफ़ानी लहरों पर कर दी जीर्ण तरी ले यात्रा जारी।
डर कर कहती हो, मैं माँगूँ
इस दुनिया से आज सहारा,
जो कहती है, "अभी जला दो
तुम सपनों का उपवन सारा।"

६

जो मिट जाते हैं चरणों के नीचे आकर कीट-पतंगे।
आसमान के नीचे रहते कठिन शीत में भूखे-नंगे।
बेघर-बार राह में बैठे अंधे, लूले,, लँगड़े, पंगे।
आज उन्हीं में समझ रहे हैं दुनियाँ वाले हमें लफंगे।
दिखा दया के टुकड़े, हम से
वे जीवन का मोल कर रहे।
वैभव के पैमाने पर वे
भोले दिल का तोल कर रहे।

७

बहुत तन चुकी मेरे दुर्बल प्राणों की साँसों की डोरी।
आँखों में अँगारे भर कर मौत खड़ी है ताने त्योरी।
इसे छुओ मत सह न सकेगी यह आघातों की बरजोरी।
जग से अपमानों की भिक्षा लेने मत मजबूर करो री।
चलते चलें सदा एकाकी
चलते-चलते ही मिट जावें।
हारिल पक्षी से अम्बर में
उड़ते-उड़ते प्राण गँवावें।

८

प्रिये, छोड़ बैठे जो घर हम अब उस घर की याद करें क्यों ?
स्वप्न हो गए दिवस सुखों के उनकी स्मृति में आह भरें क्यों ?
वर्तमान का तीखा प्याला पी लें हँसते हुए, डरें क्यों ?
मरने के पहले ही बोलो, बार-बार बेकार मरें क्यों ?

यह सच है दिल ही तो है यह
कभी टूट जाता दर्पण-सा।
पर, कठोर जग में रहने को
उसे बनाना है पाहन-सा।

९

क्या कहती हो पर्ण-कुटी में आज भयानक तम है छाया।
दीप जलाने भर को हमने स्नेह नहीं दुनिया से पाया।
यह भी अच्छा है, अब जग की हमें न फुसलावेगी माया।
उसने दे निर्वासन हमको है अटूट विद्रोह जगाया।

थके हुए प्राणों में निशिदिन
तीव्र जला करती है ज्वाला।
प्रिये, शस्त्र अब तीखे कर
गहरा भर दो मद का प्याला

१०

प्रिये, मनोरंजन अब कैसा, वीणा मेरे पास न लाओ।
कोयल बन क्यों व्यर्थ जगत् की डाल-डाल पर गीत सुनाओ।
आज आखिरी बार एक क्षण और तुम्हें देता हूँ, आओ।
इस बिछुड़े से आलिंगन में युग-युग चुम्बन का सुख पाओ।
अब ममता की जंजीरों से
विद्रोही को मुक्त बनाओ।
शस्त्र हाथ में देकर मुझ को
समर-भूमि की राह दिखाओ।

११

क्या कहती हो एक घड़ी रुक, मधुर स्नेह-संगीत सुनाऊँ।
सूखी हुई स्नेह-क्यारी में क्षण जीवन की धार बहाऊँ।
मेरी साँस-साँस में ज्वाला, बोलो तो, सखि, कैसे गाऊँ।
मुझ को जाने दो इस ज्वाला में जग का अभिमान जलाऊँ
जग को रहने योग्य बनाऊँ
या अपना अस्तित्व मिटाऊँ।
क्यों बेदर्द जगत् के आगे
पीड़ा को बेपर्द बनाऊँ।

अग्नि-गान

१

यह लो, प्रिये, सम्हालो वीणा, मुझे मसाल जला कर ला दो।
पागल गीतों से प्राणों में आज तीव्रतम आग लगा दो।
अँगारों को गूँथ-गूँथ कर आज पहन लें उज्ज्वल माला।
तुम लपटों की साड़ी पहनो, मैं लपटों का लाल दुशाला।
बनो कुमारी अग्नि-परी, मैं
मूर्तिमान बन जाऊँ ज्वाला।
विश्व स्तब्ध होकर देखे अब
अपना ताण्डव-नृत्य निराला।

२

तुम्हें याद होगी वह कुटिया, जिसमें स्वर्ग विहँसता रहता।
तुम्हें याद होंगी वे घड़ियाँ, जिनमें रस-निर्झर था बहता।
मैं गाता, तुम बीन बजाती, यौवन में मन मदमाता था।
जब मधुमास हमारे मानस में मधु ही मधु भर जाता था।
अपने उस आनन्द-निकेतन
में दुनिया ने आग लगा दी।
आज किसी ने इन प्राणों में
फिर उस दिन की याद जगा दी।

३

हमने आँखों में पानी भर जग से माँगी भीख बहुत दिन।
सुनते रहे महा पुरुषों की हम संयम की सीख बहुत दिन।
गली-गली में भटक-भटक कर अपमानों का बोझ बटोरा।
मुट्ठी भर दाने पाने को फिरे हाथ में लिए कटोरा।
चिथड़े सड़े लपेटे तन पर
और पेट पर पट्टी बाँधी।
इन महलों में आग लगा दें
उठती रहती उर में आँधी।

४

हम ने जग से क्या चाहा था—एक झौंपड़ी नदी-किनारे,
और तुम्हारी वीणा का स्वर, जिसमें स्पंदित सपने प्यारे,
अधरों की मुसकान, हृदय की धड़कन, आँखों की चल-चितवन,
चपल चरण-गति, नूपुर का कल-रव, प्राणों का मतवालापन।
एक लहर में बहा ले गया
सब कुछ, प्रिये, जुल्म का शासन।
खुले गगन के तले धूल में
बना हमारा शुचि सिंहासन।

५

हमने रो-रो कर दुनिया में महासिन्धु था भरना चाहा।
हमने फूल-समान हृदय को चरणों पर था धरना चाहा।
एक वस्त्र तन की शोभा को, जीवन-रक्षा को दो दाने।
यह भी नहीं मिला जब हमको, क्यों न बनें हम अब दीवाने
मैं हूँ काल-दिवस दीवाना,
तुम हो काल-रात्रि दीवानी।
चलो, बढ़ो जग के कण-कण में
हमें आज है आग लगानी।

६

देखो, वहाँ वाटिका फूली, यौवन मद में भूली क्यारी।
देखो उधर स्वर्ण-महलों में नृत्य-गान-उत्सव है जारी।
मालिन लिए जा रहीं उनके लिए गूँथ सुन्दर मालाएँ।
देखो, मुस्काती जाती हैं उनके लिए ललित बालाएँ।
उन लोगों ने जग की सारी
दौलत पर अधिकार जमाया।
यह सब देख-देख प्राणों में
आज प्रलय का झोंका आया।

७

दौलत वालों की दीवाली और हमारे लिए दिवाला।
उनके घर वैभव न समाता, हमें नहीं उपलब्ध निवाला।
मावस की काली रजनी में धनिक जलाते दीपक-माला।
देख रहे हम उस जगमग में हमे जलाने वाली ज्वाला।
बाजे बजते हैं महलों के
आगे गगन गुँजाने वाले।
कोलाहल में कौन हृदय की
धड़कन सुनने आने वाले।

८

वही आग, जिसकी ज्वाला में जली पद्मिनी 'जौहर' वाली।
वही आग, जिसकी लपटों में अमर हुई मैना मतवाली।
वही आग, थी देवि जोन ने पहनी जिसकी उज्वल साड़ी।
वही आग, था भस्म हो गया जिसमें पागल मदन खिलाड़ी।
वही विश्व का कूड़ा करकट
आज जलाने को जागेगी।
प्रिये, हमारी वीणा ऐसा
भैरव अग्नि-गान गावेगी।

९

मैं मसाल लेकर चलता हूँ, तुम वीणा के तार बजाना।
'ईंधन ले-ले कर आजाओ' छिड़ने दो अब यही तराना।
जो फूले हैं रक्त-पान कर उनको भैरव रूप दिखाना।
महल गिराकर, आज वहाँ पर है उनका शमशान सजाना।
जो पहने रहते हैं निशिदिन
रेशम, मखमल, हीरे, मोती।
उन्हें सामने देखेंगे हम
पहने हुए अकेली धोती।

१०

हम शासन, कानून, नियम की, जंजीरों के टुकड़े कर दें।
इन काँटों को आज जला दें, फूलों से उपवन को भर दें।
वन के मृग से सब जन घूमें. हिंसा के हम प्राण निकालें।
विष की जननि सभ्यता के हम आज गले में फाँसी डालें।

यहाँ न कोई राजा होगा,
यहाँ न कोई प्रजा कहावे।
प्रकृति-परी के उपहारों पर,
कोई क्यों अधिकार जतावे।

११

उनसे कहते रहे बहुत हम आकर बैठो पास हमारे।
पर वे हमसे कहते रहते, 'बने रहो तुम दास हमारे।
शस्त्र-हीन, बलहीन आज हम, उनके पास तोप-तलवारें।
आए दिन हम पर होती हैं गरम गोलियों की बौछारें।

आज भूमि-तल और गगन से
ध्वनि आती है बलिदानों की।
आज लगा ही देनी होगी
हम को भी बाज़ी प्राणों की।

असन्तोष की आग—

१

प्रिये, युगों के बाद हमें फिर आज होश है आने पाया।
कहाँ गया मदिरा का प्याला, बेहोशी में कहाँ गँवाया।
किस बेहोशी में रहते थे, हमें न होश रहा पीने का।
सब चिंताएँ छोड़ सदा अलमस्तों का जीवन जीने का।

तुम थीं, प्रिये, और मदिरा थी,
अपनी वाणी थी मतवाली।
भूत भविष्यत् दूर खड़े थे,
वर्तमान भरता था प्याली।

२

नए नए मैं गीत बनाता, तुम गाती थीं, मेरी रानी।
मैं सुन कर होता दीवाना, तुम गाकर होती दीवानी।
गाते-गाते बेसुध होकर रुक जाती थी मादक वाणी।
मेरी साँसें नहीं समातीं, हो उठती बेचैन जवानी।
एक-दूसरे के प्राणों में
घुसने को व्याकुल हो जाते।
काल-कूट से भी तीखा हम
चुम्बन पाते, होश गँवाते।

३

पर शराब भी तो दुनिया में बिकती है पैसों से, बाले।
कब तक पीते, पड़े हुए थे हम तो कंगाली के पाले।
तुम्हें देखते हुए किसी दिन मर पाता तो मैं जी जाता।
बिना सहे अपमान जगत् का इन चरणों में प्राण चढ़ाता।
मुझे लोभ था प्रिये, तुम्हारा,
तुम्हें छोड़ कर कैसे जाता?
इस अमूल निधि के बदले में
स्वर्ग-लोक में मैं क्या पाता?

४

दिल ने कहा, तुम्हें साँसों के धागे नहीं तोड़ने होंगे।
जीना है तो ये मदिरा के प्याले सभी फोड़ने होंगे।
स्वप्न-लोक से उतर सत्य की समर भूमि में लड़ना होगा।
एक-एक पैसे के पीछे तुमको नित्य झगड़ना होगा।
जग की इष्टदेवि है दौलत,
इसके लिए सभी पागल हैं।
भाग्यवान हैं वे नर जिनके
घर बजते इसके पायल हैं।

५

छीना-झपटी लगी हुई है, सभी ओर संग्राम छिड़ा है।
इस दौलत के खेल निहारों, आज बन्धु से बन्धु भिड़ा है।
प्रिये, एक पैसे के पीछे प्रस्तुत जगत जान लेने को।
और एक पैसे के पीछे प्रस्तुत जगत जान देने को।
ऐसे जग में भला डालते
कब तक हम मदिरा के प्याले।
कहा पेट ने 'क्यों बैठे हो
तुम अपना संगीत सम्हाले'।

६

हमने जिये, कला का जग की हाट-बाट में मोल कराया।
किन्तु पेट भरने को भी तो हमने उससे द्रव्य न पाया।
नित्य कला का उठा-उठा कर घूंघट, हमने रूप दिखाया।
जग-रुचि के अनुकूल नई विधि से उसका शृंगार सजाया।
सती बन गई वेश्या फिर भी
जीने का आनन्द न आया।
माया मिली न राम, व्यर्थ ही
प्राणों का अपमान कराया।

७

हमने देखा श्रीमंतों को, हमें जिन्होंने दास बनाया।
क्या जादू रखते हैं, जिसके बल पर इतना द्रव्य कमाया।
हमने देखा हमी परिश्रम करके इनके कोष भर रहे।
आज ग़रीबों के लोहू की मदिरा पी वे मौज कर रहे।
उनके शासन का रथ हमने
लाद रखा अपने प्राणों पर।
हमने अपने स्वत्व गँवाए,
उनके काले फ़रमानों पर।

८

कुञ्ज-कुञ्ज से कुसुम-कुसुम ले माली माला रच कर लाता।
सेठ गले में पहन घड़ी भर, किसी गली में तोड़ गिराता।
क्यों न, प्रिये, हम इन फूलों का कुछ आनन्द उठाने पावें?
देन प्रकृति की पर ये अपना क्यों अधिकार जमाने पावें।
हम निरीह हैं, द्रव्यहीन हैं,
अलग-अलग हैं, मरे हुए हैं।
जाग पड़ें तो इन प्राणों में
महाकाल को भरे हुए हैं।

९

कृषक अन्न पैदा करते हैं, पर ये सब का सब ढो लाते।
जो उपजाते हैं, वे ही क्यों नहीं पेट भर खाने पाते?
उन मजदूरों को तो देखो, प्रिये, जिन्होंने महल बनाए।
उनसे जाकर पूछो क्यों वे कभी न उन में रहने पाए?
मिल में देखो, कौन परिश्रम
करते, सुन्दर वस्त्र बनाते?
पूछो क्यों न कभी वे उनसे
अपनी प्यारी देह सजाते?

१०

उनकी मोटर चलती जाती, हम लोगों पर धूल उड़ाती।
हम यह सब सहते जाते हैं क्यों न हमारी जलती छाती ?
क्यों न, प्रिये, हम से कंगालों की सेना निज शक्ति दिखाती ?
जिन कन्धों पर महल खड़े हैं उन कन्धों को क्यों न हटाती।
असंतोष की आग हृदय में,
सभी सम्हाले पाले जाते।
क्यों न मिला कर इन लपटों को
महा-प्रलय का दृश्य दिखाते ?

११

आज, प्रिये, हम फिर ढालेंगे, बन कर फिर स्वच्छन्द जिएँगे।
दाम नहीं, तो दूकानों को लूट-लूट कर आज पिएँगे।
आज सजाऊँगा मैं तुम को आभूषण अमूल्य ला ला कर।
जो अपना है उसे प्राप्त कर खुश होंगे हम मौज मना कर।
वे वेश्या का साज सजावें,
तुम पहनो ये फटे-पुराने।
बहुत हुआ अब हम जाते हैं,
इस दुनिया में आग लगाने।

महादेव-मानव

१

मैं भोला—करता निहाल उसको जो मुझ से नाता जोड़े।
देता हूँ वरदान उसे भी, मुझे राख करने जो दौड़े।
फूँक-फूँक कर चिनगारी को महाअनल में परिवर्तित कर—
उसकी लपटों से बचने को भागा फिरता मैं शिव शंकर।

मैं देता हूँ शक्ति नरों को,
सुरों, दानवों को खुश होकर।
पर चलते विपरीत राह वे
आत्मा की आँखों को खो कर।

२

मेरा हृदय टटोला किसने, मेरा जीवन किसने जाना ?
कहा किसी ने मैं विष पीता, मुझे भँगेड़ी भी है माना।
मेरे सर पर रेंगा करते सर्प देख कर सब चकराते।
जब मैं करता नृत्य भूधरों के भी अचल प्राण हिल जाते।
मैं विचित्र प्राणी हूँ मुझ तक
कौन समझ पहुँचाने पाता।
मुझे प्राप्त करने को रावण
अपने दश-दश शीश चढ़ाता।

३

मैं हूँ वीतराग जग कहता, किंतु सती की लाश उठाए,
घूम फिरा ब्रह्मांड अखिल मैं, अपना सब देवत्व भुलाए।
मेरा योग शांतिमय निश्चल, पर वियोग आँधी से बढ़ कर।
हूँ तिनका-सा उड़ा व्योम में मैं वियोग-अंधड़ पर चढ़ कर।
युग युग तक समाधि में रहने
की रखता हूँ शक्ति महत्तम।
पर नारी के बिना, सिद्धि का
शुचि प्रकाश भी है मुझको तम।

४

मैं कैलास शिखर का वासी, जिस स्थल मानवता गल जाती !
अरे, यहाँ भी रहकर गौरी मुझे प्रेम का खेल खिलाती !
कामदेव को जला दिया था मेरी कोप भरी चितवन ने !
किंतु, मोहनी के पीछे था मुझे फिराया मेरे मन ने !

रति का रोना मेरे पत्थर
दिल से बहा ले गया पानी !
फिर अनंग बन जीवित होकर
कामदेव ने जीते प्राणी !

५

मैं त्रिशूल लेकर चलता हूँ, मेरे डमरू में विनाश है !
पर है चन्द्र भाल पर मेरे, वहाँ सुधा है, नव-प्रकाश है !
मेरा एक और लोचन है जिस में सर्वनाश सोता है !
वह तो तभी खुला करता है जब मन अति विचलित होता है !

मैंने जग में बहा रखी है
अपने सर से सुरसरि धारा !
जिस में करके स्नान बहाया
करता पाप जगत् है सारा !

६

यश की होड़ लगी है, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदिक सब भागे,
मैं तो इस कैलास शिखर पर बैठा, रहा सभी से आगे।
मैंने नहीं छिपाई भूलें, मैं रहता हूँ खुल कर नंगा।
गौरी की तो बात कहूँ क्या, कभी नहीं शरमाई गंगा।
साथ पिशाचों के रहता हूँ,
जो लाशों का लोहू पीते।
मेरी प्रिया चंडिका बनती
जिस से कभी न दानव जीते।

७

जिस दिन सिंधु मथा देवों ने पाकर गरल सभी घबराए।
किस में इतनी शक्ति गरल को पीले और पचाने पाए?
जिसे न जीने की इच्छा है उसे अमृत की चाह रहे क्यों?
जो आवे पी डाले हँसकर, अपने मुँह से नहीं कहे क्यों?
जो थे लड़े अमृत की खातिर
वे थे देव, और थे दानव।
जो औरों का विष पी लेता
मैं हूँ महादेव—मैं मानव।

८

मैं चलता हूँ बैठ वृषभ पर जिसके सर पर जुआ जगत् का।
जिसकी प्रिया दूध देती है घटा रहा जो मान अमृत का।
मुझ को सब के शिशु प्यारे हैं गया नंद के घर भिक्षुक बन।
मुझे ईश के दर्शन मिलते मानव के सुत के कर दर्शन।
मुझे लोग ईश्वर भी कहते
पर मैं उसका एक पुजारी।
है बर्फ़ीली गहन गुफ़ा में
बैठ साधना मेरी जारी।

९

मैंने कभी न देव-दानवों का अंतर अंतर में पाला।
कभी न देखा मेरे अनुचर का मुख गोरा है या काला।
मैंने बाणासुर का लेकर पक्ष कृष्ण से रण था ठाना।
पाप-पुण्य से परे भक्त की दुनिया को मैंने है माना।
जिस दिन रावण मरा हृदय की
मेरे हलचल किसने जानी!
फूल राम पर जो बरसाए
उनमें था आँखों का पानी!

१०

परशुराम हो, या कि राम हो, या रावण हो, सब मेरे हैं।
मैं तो उनका हूँ जो मुझ से आकर कहते हम तेरे हैं।
मेरे वसुंधरा से उर में दोनों ही हैं आग व पानी।
मेरी आँखों में दोनों हैं पानी और तड़ित दीवानी।
मैं जग को वैभव देता हूँ,
स्वयं दिगंबर रहने वाला।
मैं फूलों की नहीं, पहनता
कभी-कभी मुंडों की माला!

११

जिस पथ से आता जाता हूँ उजड़ा जगत् बसा जाता हूँ।
जो कुटियाएँ हुई अँधेरी उनमें दीप जला जाता हूँ
जो घर पर्वत बन जाते हैं उनको धूल बना जाता
कोई मुझको क्या जानेगा किस क्षण में मैं क्या गाता हूँ।
कभी प्रीत की बंसी बजती,
कभी क्रांति का डमरू मेरा!
मैंने प्राणों में भर रक्खे
जीवन-मरण, प्रकाश-अँधेरा;